अंतरा

भाग 1

कक्षा 11 के लिए ऐच्छिक हिंदी की पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

2018-19

प्रथम संस्करण
मार्च 2006 चैत्र 1927

पुनर्मुद्रण
मार्च 2007 फाल्गुन 1928
अक्तूबर 2007 अश्विन 1929
जनवरी 2009 पौष 1930
दिसंबर 2009 पौष 1931
जनवरी 2012 माघ 1933
जनवरी 2013 माघ 1934
नवंबर 2013 कार्तिक 1935
नवंबर 2014 कार्तिक 1936
मई 2016 वैशाख 1938
दिसंबर 2016 पौष 1938
दिसंबर 2017 पौष 1939

PD 30T RSP

© ***राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006***

₹ 65.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा पर्ल ऑफ़सेट प्रैस प्राईवेट लिमिटेड, 5/33, कीर्ति नगर, औद्योगिक क्षेत्र, नयी दिल्ली-110 015 द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-527-X

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलूरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	: *एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक	: *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	: *गौतम गांगुली*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी)	: *अरुण चितकारा*
संपादक	: *मीरा कांत*
उत्पादन सहायक	: *मुकेश गौड़*

आवरण एवं सज्जा
कल्याण बनर्जी

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभव पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

यह उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है, जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी

इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जानेवाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर नामवर सिंह और समिति के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली

20 दिसंबर 2005

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *पूर्व प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली।

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *पूर्व प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य

कमला प्रसाद, *उपाध्यक्ष,* केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

चंद्रकांत देवताले, *कवि* एवं *साहित्यकार,* उज्जैन, मध्य प्रदेश।

नज़ीर मोहम्मद, *प्रोफ़ेसर* (अवकाश प्राप्त), अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़।

मंजुरानी सिंह, *पी.जी.टी.* (हिंदी), केंद्रीय विद्यालय, जे.एन.यू. परिसर, नयी दिल्ली।

मंजुला माथुर, *प्रोफ़ेसर,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

महेंद्रपाल शर्मा, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष,* हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली।

रामगोपाल वर्मा, *प्राध्यापक,* दिल्ली पब्लिक स्कूल, आर.के.पुरम्, नयी दिल्ली।

सदस्य-समन्वयक

लालचंद राम, *प्रोफ़ेसर,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में अकादमिक सहयोग के लिए हम दिलीप सिंह, *कुलसचिव,* दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई; गोविंद प्रसाद, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली; दुर्गा प्रसाद गुप्ता, *रीडर,* हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नयी दिल्ली; जयंती उपाध्याय, *पी.जी.टी.,* केंद्रीय विद्यालय, दिल्ली कैंट; गुरुदयाल कनौजिया, राजकीय उच्चतर माध्यमिक बाल विद्यालय, रजोकरी, नयी दिल्ली के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

जिन लेखकों और कवियों की रचनाएँ इस पुस्तक में सम्मिलित की गई हैं उनके स्वत्वाधिकारियों के प्रति एवं कई रचनाकारों के चित्र उपलब्ध कराने के लिए राजकमल प्रकाशन का हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

इस पुस्तक के निर्माण में तकनीकी सहयोग के लिए *कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज* परशराम कौशिक*; कॉपी एडीटर* अदिति ठाकुर, सुप्रिया गुप्ता, प्रमोद कुमार तिवारी और समीना उस्मानी; *डी.टी.पी. ऑपरेटर* सचिन कुमार तथा जय प्रकाश राय के हम आभारी हैं।

पाठ्यपुस्तक के बारे में

यह पाठ्यपुस्तक 11वीं कक्षा में ऐच्छिक हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए तैयार की गई है। इसमें साहित्य की विविध विधाओं संबंधी नौ गद्य रचनाएँ तथा दस कवियों की कविताएँ संकलित हैं। पाठों का चयन इस प्रकार किया गया है कि रचनाओं के माध्यम से हिंदी गद्य और कविता का विकास-क्रम रेखांकित किया जा सके। साथ ही बदलते हुए सामाजिक भावबोध को भी इन रचनाओं के माध्यम से देखा जा सकता है।

हिंदी साहित्य में गद्य के निर्माण और विकास का काल आधुनिक युग रहा है। गद्य की विभिन्न विधाओं का इस समय विकास हुआ और हिंदी भाषा की वह अभिव्यक्ति-क्षमता सामने आई जिसमें विभिन्न भावबोध और सामाजिक सरोकार उजागर हुए। इसके साथ ही यह भी दिखाई देता है कि खड़ी बोली हिंदी गद्य की भाषा बनकर विकसित हुई। चयनित पाठ इस बात का प्रमाण हैं।

हिंदी गद्य के विकास में भारतेंदु का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे हिंदी गद्य के जन्मदाता कहे जाते हैं। अपने नाटकों और लेखों के माध्यम से उन्होंने मिश्रित हिंदी शैली की आधारशिला रखी थी। भारतेंदु के गद्य में ब्रज तथा हिंदी की अन्य बोलियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतेंदु का जो पाठ यहाँ दिया गया है, वह अनेक दृष्टियों से विशिष्ट है। यह एक भाषण है, इसलिए इसकी भाषिक प्रकृति बोलियों के प्रभाव से युक्त है। दूसरे यह कि भारतेंदु के समाजचेता व्यक्तित्व का यह प्रतिबिंब है, जो भाषण के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। तीसरे यह कि इस पाठ में तत्कालीन सामाजिक स्थितियों और उनकी कमज़ोरियों पर बेबाक टिप्पणी की गई है तथा एक सशक्त राष्ट्र के रूप में भारत का निर्माण किस तरह हो सकता है, इसकी ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है। कहना न होगा कि भारतेंदु ने जिन स्थितियों में सुधार की बात कही है उनमें से कई आज भी भारतीय समाज में उपस्थित हैं।

इस पाठ्यपुस्तक में पाँच कहानियाँ हैं। पाँचों का अपना एक सामाजिक ऐतिहासिक संदर्भ और महत्त्व है। हिंदी गद्य के विकास में कथा साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके दो कारण देखे गए हैं – एक तो यह कि कहानियाँ परिवेश और पात्रों का यथार्थ चित्र खड़ा कर पाती हैं। दूसरे यह कि सामाजिक वर्ग विभाजन की त्रासदी को कथा साहित्य तीक्ष्णता के साथ अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। विद्यार्थी चयनित कहानियों को पढ़कर न केवल रचनाओं की सामाजिक प्रतिबद्धता से परिचित होंगे, बल्कि वे हिंदी भाषा की सामाजिक शैलियों की अपार शक्ति से भी लाभ उठा सकेंगे।

पाँचों कहानियाँ अपने सामाजिक सरोकारों में अलग-अलग धाराओं पर खड़ी हैं। ये मिलकर भारतीय समाज की एक पूरी तसवीर विद्यार्थियों के सामने रखेंगी। ये कहानियाँ हिंदी कथा साहित्य के विकास-क्रम का भी स्वत: परिचय देती हैं। इसमें एक कहानी प्रेमचंद की 'ईदगाह' है, जो बाल-मनोविज्ञान पर आधारित कहानी है। दूसरी कहानी अमरकांत की 'दोपहर का भोजन' है। कथाकार अमरकांत प्रेमचंद की परंपरा के माने जाते हैं। सामाजिक चेतना के स्तर पर अमरकांत भी प्रेमचंद की ही भाँति सामाजिक विडंबनाओं को सूक्ष्मता से समझते हैं और उसे अत्यंत सांकेतिकता के साथ व्यक्त करते हैं। यह कहानी भी बातों-बातों में ही समाज के एक निर्मम यथार्थ को प्रकट करती है। तीसरी कहानी 'गूँगे' रांगेय राघव की है। उनकी दृष्टि इतिहास और लोक से आबद्ध थी। इस कहानी में उन्होंने एक गूँगे-बहरे बालक के माध्यम से मानव संवेदना के टूटते हुए तंतुओं की ओर इशारा किया है। सामाजिक यथार्थ से जुड़ी चौथी कहानी ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'खानाबदोश' है, जिसमें मज़दूरों के जीवन-संघर्ष को रूपायित किया गया है। शहरों के विस्तार से समस्त भारत में मज़दूरों का एक नया समाज बना है। छोटे नगरों, कस्बों और गाँवों से मज़दूर महानगरों की ओर पलायन करते हैं और अपने श्रम के बल पर दूसरों के रहने के लिए अट्टालिकाएँ खड़ी करते हैं, पर उनके जीवन में एक झोंपड़ी का सपना भी सपना ही रह जाता है। कहानी का केंद्रीय बिंदु यही है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानी 'उसकी माँ' आज़ादी की लड़ाई से संबंधित एक मार्मिक कहानी है।

इस पुस्तक में कहानियों के अतिरिक्त हिंदी गद्य की अन्य विधाओं को भी सम्मिलित किया गया है। 'टार्च बेचने वाले' प्रसिद्ध लेखक हरिशंकर परसाई की व्यंग्य रचना है। उनका व्यंग्य लेखन कहानी के निकट है तथा उनकी कथात्मकता व्यंग्य को सहज संप्रेषणीय बना देती है। 'टार्च बेचने वाले' भी ऐसी ही रचना है।

व्यंग्य के बाद जीवनी विधा को स्थान दिया गया है। सुधा अरोड़ा की रचना 'ज्योतिबा फुले' एक प्रेरक रचना है। महात्मा फुले जैसे व्यक्तियों की छाप भारतीय जनमानस पर बहुत गहरी पड़ी है। पुराणपंथी ब्राह्मण समाज ने फुले की उदार सामाजिक दृष्टि की अवहेलना ही नहीं की, बल्कि सामाजिक उत्थान के लिए किए गए उनके प्रयत्नों के रास्ते में रोड़े भी अटकाए। फुले और उनकी पत्नी ने स्त्री-शिक्षा तथा अछूतोद्धार का प्रण लिया था। भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता के पहले सामाजिक सुधार के स्वर चारों तरफ़ गूँजे थे। महाराष्ट्र में यह स्वर महात्मा फुले का था। आडंबरों, पाखंडों में जकड़े समाज को मुक्त करने की यह जद्दोजहद तीव्र-से-तीव्रतर होती गई। इसी तीव्रता का वर्णन इस जीवनी में हुआ है।

अगली रचना 'नए की जन्म कुंडली : एक' नयी कविता के प्रसिद्ध कवि और आलोचक मुक्तिबोध की एक साहित्यिक की 'डायरी' का एक निबंध है। डायरी शैली में लिखी इस रचना के सरोकार भी व्यापक हैं। मुक्तिबोध स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। वे केवल कवि ही नहीं महत्त्वपूर्ण चिंतक और विचारक भी हैं, जिन्होंने हिंदी आलोचना को नया आयाम दिया है।

गद्य खंड की अंतिम रचना है भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा रचित 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?'

गद्य खंड की सभी रचनाएँ अपने समय का प्रतिनिधित्व करनेवाली हैं। इन रचनाओं में समाज, संस्कृति और इतिहास से संबंधित कई विचारणीय बिंदु समाहित हैं। इनके अध्ययन से विद्यार्थी हिंदी गद्य के विकास-क्रम से भी परिचित हो सकेंगे।

हिंदी कविता लगभग एक हज़ार वर्षों की यात्रा तय कर चुकी है। इस लंबी विकास यात्रा को एक पाठ्यपुस्तक में स्थान दे पाना संभव नहीं है। हमारा प्रयास यह है कि ग्यारहवीं और बारहवीं दोनों कक्षाओं के माध्यम से हिंदी के कवियों से विद्यार्थियों का इस तरह परिचय हो कि वे कविता के विकास-क्रम को भी जान सकें।

भक्तिकाल को हिंदी कविता का स्वर्ण युग कहा जाता है। इसी युग में कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, मीरा, रैदास, दादू जैसे संत-भक्त कवि हुए हैं। इस पुस्तक में भक्तिकाल के दो प्रतिनिधि कवियों – कबीर और सूर को स्थान दिया गया है। हिंदी के विद्यार्थी दसवीं कक्षा तक कबीर से बहुत कुछ परिचित हो जाते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कबीर के जो दो पद यहाँ दिए गए हैं, उनमें से एक सामाजिक बुराइयों पर केंद्रित है और दूसरा स्त्री की समस्या पर कबीर की दृष्टि का परिचायक है। दोनों पद अपनी भावपरकता और संरचनागत रचाव में नितांत विशिष्ट और अलग तरह के हैं।

सूर कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि माने जाते हैं। अष्टछाप के कवियों में भी उनका प्रथम स्थान है। यहाँ सूर के दो पद दिए गए हैं। एक में कृष्ण की बाललीला का मनोहारी चित्रण है। दूसरे में राधाकृष्ण के प्रेम का श्रृंगारिक वर्णन है।

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल आता है। आलंकारिकता और श्रृंगारिकता रीतिकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। यहाँ इस युग के दो कवियों – देव और पद्‍माकर से परिचित कराया जा रहा है।

देव के तीन छंद इस पुस्तक में दिए गए हैं। दो में विप्रलंभ (विरह) श्रृंगार का वर्णन है, जिसमें रीतिकालीन काव्य-रूढ़ियों का पूरी तरह पालन हुआ है। तीसरा छंद सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है, जिसमें तत्कालीन सामंती समाज के भोग-विलास पर देव ने चोट की है। पद्‍माकर रीतिकाल के परवर्ती कवियों में एक हैं, जिनमें

सौंदर्य की परख की अद्‌भुत क्षमता है। इस पाठ्यपुस्तक में उनके भी तीन छंद दिए गए हैं, जो प्रकृति और शृंगार से संबद्ध हैं।

आधुनिक हिंदी कविता में छायावाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इसके प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। यहाँ सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा की रचनाएँ चुनी गई हैं। पंत की एक लंबी कविता 'संध्या के बाद' इस पुस्तक में दी गई है। यह कविता पंत के प्रसिद्ध काव्य-संग्रह 'ग्राम्या' में संकलित है। छायावाद के परंपरागत प्रभाव से मुक्त होकर पंत ने जब प्रगतिशील रचनाधर्मिता की ओर रुख किया तब 'ग्राम्या', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'युंगात' और 'परिवर्तन' जैसे काव्य-संग्रह सामने आए। 'संध्या के बाद' कविता में पंत के दोनों रूप संयोजित दिखाई देते हैं। महादेवी की दो कविताएँ हैं और दोनों ही अति लोकप्रिय हैं। 'जाग तुझको दूर जाना' एक सुंदर प्रयाण गीत है, जिसमें महादेवी ने मनुष्य से कोमल भावों को छोड़कर जीवन-संघर्ष को अपनाने का आह्वान किया है। 'सब आँखों के आँसू उजले' गीत में दुख और आँसू की परिणति उमंग और आशा के रूप में हुई है। महादेवी के ये दोनों गीत उनकी रहस्यानुभूति और दुखवाद से अलग भावभूमि पर रचे गए हैं।

हिंदी साहित्य में छायावाद के परवर्ती दिनों में एक अन्य प्रकार की स्वच्छंदतावादी काव्य-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई। यह काव्य-प्रवृत्ति भी मूलतः रोमांटिक ही थी, किंतु इसमें हृदय की सहज अनुभूतियों की अभिव्यक्ति पर छायावाद से कहीं अधिक बल दिया गया। भाषा की दृष्टि से यह काव्य-प्रवृत्ति बोलचाल के मुहावरे के अधिक निकट थी। इस काव्य में वैयक्तिकता तथा निराशा का स्वर भी तीखा है। अपने लोकप्रिय गीतों के लिए यह काव्य-प्रवृत्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नरेंद्र शर्मा इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका एक गीत 'नींद उचट जाती है' यहाँ संकलित है।

छायावाद के बाद दो काव्य-प्रवृत्तियों (प्रगतिवाद और प्रयोगवाद) का समानांतर विकास दिखाई पड़ता है। प्रगतिवाद ने जहाँ समाज के निम्नवर्ग, शोषित-पीड़ित

जनता के प्रतिनिधि – किसानों और मज़दूरों को कविता में स्थान दिया वहीं प्रकृति के क्षेत्र में आँचलिक एवं गँवई प्रकृति के विभिन्न रूपों को भी उजागर किया। विषयवस्तु के साथ ही प्रगतिवाद ने हिंदी कविता की भाषा का भी जनवादीकरण किया। परिणामस्वरूप लोकजीवन में प्रचलित बोलियों के शब्दों को लेकर कविता फिर जी उठी। जनकवि नागार्जुन उसी काल की देन हैं। नागार्जुन लोक जीवन के कवि और कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता 'बादल को घिरते देखा है' इस पाठ्यपुस्तक में दी गई है।

हिंदी काव्य की प्रगतिशील धारा के बाद नयी कविता का दौर शुरू होता है, जिनमें से श्रीकांत वर्मा की कविता 'हस्तक्षेप' को संकलित किया गया है। श्रीकांत वर्मा की अधिकांश कविताएँ भारतीय इतिहास और मिथक के आलोड़न से बनी हैं। उनकी कविताओं में समय और समाज की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के प्रति क्षोभ, आक्रोश और अस्वीकार का स्वर मुखरित हुआ है। उनमें परिवेश और उसे झेलते मनुष्य के प्रति गहरा लगाव है। श्रीकांत वर्मा में यदि परंपरा का स्वीकार है तो उसे तोड़ने और बदलने की बेचैनी भी है। पाठ्यपुस्तक के अंत में धूमिल को रखा गया है। वे साठोत्तरी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर माने जाते हैं। धूमिल की कविता में एक आक्रोश है जो व्यक्तिगत न होकर जन आक्रोश है, वही धूमिल की कविता की ताकत भी है। यही नहीं उन्होंने कविता को एक जीवंत भाषा दी जिसका मूल स्रोत आम जनता की बोली में है। 'घर में वापसी' कविता उसका जीवंत प्रमाण है।

इस पाठ्यपुस्तक में चयनित सभी कविताएँ अलग-अलग भावभूमि की हैं, जो यह प्रमाणित करती हैं कि हिंदी कविता के विकास में वस्तु, शैली और शिल्प तीनों में समय-समय पर अपेक्षित परिवर्तन आते रहे हैं। इन परिवर्तनों से विद्यार्थी परिचित हो सकें, चयन के पीछे यही मूल उद्देश्य रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में हर पाठ के साथ प्रश्न-अभ्यास और विद्यार्थियों के लिए कुछ क्रियाकलाप भी दिए गए हैं। पाठ अधिक-से-अधिक खुलकर विद्यार्थियों के लिए

बोधगम्य बने तथा प्रश्न–अभ्यासों और क्रियाकलापों के माध्यम से वे पाठ के अधिकाधिक निकट पहुँच सकें, यह प्रयत्न किया गया है।

आशा है विद्यार्थियों की भाषिक तथा साहित्यिक रुचियों के विकास की दृष्टि से यह पाठ्यपुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक के परिष्कार के लिए आपकी प्रतिक्रिया और सुझाव अपेक्षित हैं।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1]**[संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य]** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2]**[राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

विषय-सूची

आमुख *iii*

पाठ्यपुस्तक के बारे में *vii*

गद्य-खंड

प्रेमचंद ☐ ईदगाह 3

अमरकांत ☐ दोपहर का भोजन 23

हरिशंकर परसाई ☐ टार्च बेचनेवाले 35

रांगेय राघव ☐ गूँगे 43

सुधा अरोड़ा ☐ ज्योतिबा फुले 54

ओमप्रकाश वाल्मीकि ☐ खानाबदोश 62

गजानन माधव मुक्तिबोध ☐ नए की जन्म कुंडली : एक 79

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ☐ उसकी माँ 91

भारतेंदु हरिश्चंद्र ☐ भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है? 107

काव्य-खंड

कबीर □ अरे इन दोहुन राह न पाई 121
बालम, आवो हमारे गेह रे

सूरदास □ खेलन में को काको गुसैयाँ 126
मुरली तऊ गुपालहिं भावति

देव □ हँसी की चोट 131
सपना
दरबार

पद्‌माकर □ औरै भाँति कुंजन में गुंजरत... 136
गोकुल के कुल के गली के गोप...
भौंरन को गुंजन बिहार...

सुमित्रानंदन पंत □ संध्या के बाद 141

महादेवी वर्मा □ जाग तुझको दूर जाना 150
सब आँखों के आँसू उजले

नरेंद्र शर्मा □ नींद उचट जाती है 157

नागार्जुन □ बादल को घिरते देखा है 161

श्रीकांत वर्मा □ हस्तक्षेप 169

धूमिल □ घर में वापसी 175

गद्य-खंड

प्रेमचंद

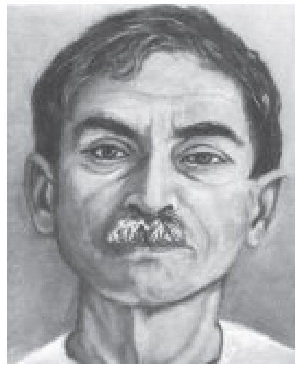

(सन् 1880–1936)

प्रेमचंद का जन्म वाराणसी ज़िले के लमही ग्राम में हुआ था। उनका मूल नाम धनपतराय था। प्रेमचंद की प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में हुई। मैट्रिक के बाद वे अध्यापन करने लगे। स्वाध्याय के रूप में ही उन्होंने बी.ए. तक शिक्षा ग्रहण की। असहयोग आंदोलन के दौरान उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और पूरी तरह लेखन-कार्य के प्रति समर्पित हो गए।

प्रेमचंद ने अपने लेखन की शुरुआत पहले उर्दू में नवाबराय के नाम से की, बाद में हिंदी में लिखने लगे। उन्होंने अपने साहित्य में किसानों, दलितों, नारियों की वेदना और वर्ण-व्यवस्था की कुरीतियों का मार्मिक चित्रण किया है। वे साहित्य को स्वांत: सुखाय न मानकर सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम मानते थे। वे एक ऐसे साहित्यकार थे, जो समाज की वास्तविक स्थिति को पैनी दृष्टि से देखने की शक्ति रखते थे। उन्होंने समाज-सुधार और राष्ट्रीय-भावना से ओतप्रोत अनेक उपन्यासों एवं कहानियों की रचना की। कथा-संगठन, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि की दृष्टि से उनकी रचनाएँ बेजोड़ हैं। उनकी भाषा बहुत सजीव, मुहावरेदार और बोलचाल के निकट है। हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने में उनका विशेष योगदान है। संस्कृत के प्रचलित शब्दों के साथ-साथ उर्दू की रवानी इसकी विशेषता है, जिसने हिंदी कथा भाषा को नया आयाम दिया।

उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं – ***मानसरोवर*** *(आठ भाग),* ***गुप्तधन*** *(दो भाग) (कहानी संग्रह);* ***निर्मला, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, गोदान*** *(उपन्यास);* ***कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी*** *(नाटक);* ***विविध प्रसंग*** *(तीन खंडों में, साहित्यिक और राजनीतिक निबंधों का संग्रह);* ***कुछ विचार***

(साहित्यिक निबंध)। उन्होंने ***माधुरी, हंस, मर्यादा, जागरण*** *आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया। इस पाठ्यपुस्तक में उनकी* ***ईदगाह*** *कहानी दी गई है।*

हिंदी में बाल-मनोविज्ञान से संबंधित कहानियाँ बहुत कम लिखी गई हैं। प्रेमचंद उन दुर्लभ कथाकारों में से हैं जिन्होंने पूरी प्रामाणिकता एवं तन्मयता के साथ बाल-जीवन को अपनी कहानियों में जगह दी है। उनकी कहानियाँ भारत की साझी संस्कृति एवं ग्रामीण जीवन के विविध रंगों से सराबोर हैं।

ईदगाह *प्रेमचंद की इन्हीं विशेषताओं को अभिव्यक्त करने वाली प्रतिनिधि कहानी है। इस कहानी में* ***ईद*** *जैसे महत्त्वपूर्ण त्योहार को आधार बनाकर ग्रामीण मुस्लिम जीवन का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया गया है। हामिद का चरित्र हमें बताता है कि अभाव उम्र से पहले बच्चों में कैसे बड़ों जैसी समझदारी पैदा कर देता है। मेले में हामिद अपनी हर चाह पर संयम रखने में विजयी होता है। साथ ही रुस्तमे हिंद चिमटे के माध्यम से प्रेमचंद ने श्रम के सौंदर्य एवं महत्त्व को भी उद्घाटित किया है। चित्रात्मक भाषा की दृष्टि से भी यह कहानी अनूठी है।*

ईदगाह

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर से सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना, दोपहर के पहले लौटना असंभव है। लड़के सबसे ज़्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज़ है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिंताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवैयाँ खाएँगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खज़ाना निकालकर गिनते हैं और खुश

होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस-बारह! उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन, आठ, नौ, पंद्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीज़ें लाएँगे – खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या-क्या! और सबसे ज़्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैज़े की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला, क्या बीमारी है। कहती तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से बिदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गए हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीज़ें लाने गई हैं; इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आएँगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती! इस अंधकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को? इस घर में उसका काम नहीं; लेकिन हामिद! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब? उसके अंदर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दलबल लेकर आए, हामिद की आनंद भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है – तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले आऊँगा। बिलकुल न डरना।

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं। हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है! उसे कैसे अकेले मेले जाने

दे? उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाए तो क्या हो? नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं-सी जान! तीन कोस चलेगा कैसे! पैर में छाले पड़ जाएँगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी; लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घंटों चीज़ें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फ़हीमन के कपड़े सिले थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए, लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती! हामिद के लिए कुछ नहीं है, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटुवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्योहार, अल्लाह ही बेड़ा पार लगाए। धोबन और नाइन और मेहतरानी और चूड़िहारिन सभी तो आएँगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस-किस से मुँह चुराएगी। और मुँह क्यों चुराए? साल-भर का त्योहार है। ज़िंदगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, दिन भी कट जाएँगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सब-के-सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथवालों का इंतज़ार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं! हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठाकर आम पर निशाना लगाता है। माली अंदर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फर्लांग पर हैं। खूब हँस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लब-घर है! इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे? सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच! उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक

पढ़ने जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर, हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के। रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या। क्लब-घर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुर्दे की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अंदर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को साहब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों-दाढ़ीवाले। और मेमें भी खेलती हैं, सच! हमारी अम्माँ को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें। घुमाते ही लुढ़क जाएँ।

महमूद ने कहा – हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोला – चलो, मनों आटा पीस डालती हैं। ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी, तो हाथ काँपने लगेंगे? सैकड़ों घड़े पानी रोज़ निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखों तले अँधेरा आ जाए।

महमूद – लेकिन दौड़तीं तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं।

मोहसिन – हाँ, उछल-कूद नहीं सकतीं, लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतना तेज़ दौड़ीं कि मैं उन्हें न पा सका, सच।

आगे चले। हलवाइयों की दूकानें शुरू हुईं। आज खूब सजी हुई थीं। इतनी मिठाइयाँ कौन खाता है? देखो न, एक-एक दूकान पर मनों होंगी। सुना है, रात को जिन्नात आकर खरीद ले जाते हैं। अब्बा कहते थे कि आधी रात को एक आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह तुलवा लेता है और सचमुच के रुपये देता है, बिलकुल ऐसे ही रुपये।

हामिद को यकीन न आया – ऐसे रुपये जिन्नात को कहाँ से मिल जाएँगे?

मोहसिन ने कहा – जिन्नात को रुपये की क्या कमी? जिस खजाने में चाहें चले जाएँ। लोहे के दरवाज़े तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाब, आप हैं किस फेर में! हीरे जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिससे खुश हो गए उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहीं बैठे हैं, पाँच मिनट में कलकत्ता पहुँच जाएँ।

हामिद ने फिर पूछा – जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे?

मोहसिन – एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। ज़मीन पर खड़ा हो जाए तो उसका सिर आसमान से जा लगे, मगर चाहे तो एक लोटे में घुस जाए।

हामिद – लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे। कोई मुझे वह मंतर बता दे तो एक जिन्न को खुश कर लूँ।

मोहसिन – अब यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज़ चोरी जाए, चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमराती का बछवा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झक मारकर चौधरी के पास गए। चौधरी ने तुरंत बता दिया, मवेशीखाने में है और वहीं मिला। जिन्नात आकर उन्हें सारे जहान की खबरें दे जाते हैं।

अब उसकी समझ में आ गया कि चौधरी के पास क्यों इतना धन है, और क्यों उनका इतना सम्मान है।

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबिल कवायद करते हैं। रैटन! फ़ाय फो! रात को बेचारे घूम-घूमकर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जाएँ।

मोहसिन ने प्रतिवाद किया – यह कानिसटिबिल पहरा देते हैं! तभी तुम बहुत जानते हो। अजी हज़रत, यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो! जागते रहो!' पुकारते हैं। जभी इन लोगों के पास इतने रुपये आते हैं। मेरे मामूँ एक थाने में कानिसटिबिल हैं। बीस रुपया महीना पाते हैं; लेकिन पचास रुपये घर भेजते हैं। अल्ला कसम! मैंने एक बार पूछा था कि मामूँ, आप इतने रुपये कहाँ से पाते हैं? हँसकर कहने लगे – बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही बोले – हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।

हामिद ने पूछा – यह लोग चोरी करवाते हैं, तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला – अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा? पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं; लेकिन अल्लाह इन्हें सज़ा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए मामूँ के घर में आग लग गई।

सारी लेई पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे! फिर न जाने कहाँ से एक सौ कर्ज़ लाए तो बरतन-भाँड़े आए।

हामिद – एक सौ तो पचास से ज़्यादा होते हैं?

'कहाँ पचास, कहाँ एक सौ। पचास एक थैली भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आए।'

अब बस्ती घनी होने लगी। ईदगाह जानेवालों की टोलियाँ नज़र आने लगीं। एक से एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, संतोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीज़ें अनोखी थीं। जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते और पीछे से बराबर हार्न की आवाज़ होने पर भी न चेतते। हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नज़र आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया है। नीचे पक्का फ़र्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है। और रोज़ेदारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गई हैं, पक्की जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नहीं है। नए आनेवाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी वज़ू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुंदर संचालन है, कितनी सुंदर व्यवस्था! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं, और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाएँ और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनंतता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानंद से भर देती थीं, मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए है।

2

नमाज़ खत्म हो गई है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौने की दूकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मज़ा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का एक तिहाई ज़रा-सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दूकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं – सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन और साधु। वाह! कितने सुंदर खिलौने हैं। अब बोला ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कंधे पर बंदूक रखे हुए; मालूम होता है अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसंद आया। कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए है। मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उड़ेला ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उसके मुख पर! काला चोगा, नीचे सफ़ेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी ज़ंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं। हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर-चूर हो जाए, ज़रा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाए, ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा, किस काम के?

मोहसिन कहता है – मेरा भिश्ती रोज़ पानी दे जाएगा, साँझ-सबेरे।

महमूद – और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आएगा, तो फ़ौरन बंदूक फ़ैर कर देगा।

नूरे – और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी – और मेरी धोबिन रोज़ कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौनों की निंदा करता है – मिट्टी ही के तो हैं, गिरे तो चकनाचूर हो जाएँ; लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है। और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं; लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते हैं, विशेषकर जब अभी नया शौक है। हामिद ललचाता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाब-जामुन, किसी ने सोहन हलवा। मज़े से खा रहे हैं। हामिद बिरादरी से पृथक है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है – हामिद, रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है!

हामिद को संदेह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है; लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकालकर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन – अच्छा, अबकी ज़रूर देंगे हामिद, अल्ला कसम, ले जा।

हामिद – रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं?

सम्मी – तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे?

महमूद – हमसे गुलाब-जामुन ले जाव हामिद। मोहसिन बदमाश है।

हामिद – मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन – लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते?

महमूद – हम समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खाएगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीज़ों की, कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वे सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दूकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है; अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी! फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज़ हो जाएगी। खिलौने से क्या फ़ायदा। व्यर्थ में पैसे खराब होते हैं। ज़रा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौने को कोई आँख उठाकर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूटकर बराबर हो जाएँगे। चिमटा कितने काम की चीज़ है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आए तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फ़ुरसत है कि बाज़ार आएँ और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज़ हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सब-के-सब शरबत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं! इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खाएँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े फुंसियाँ निकलेंगी, आप ही ज़बान चटोरी हो जाएगी। तब घर से पैसे चुराएँगे और मार खाएँगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों खराब होगी। अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी – मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है। हज़ारों दुआएँ देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखाएँगी। सारे गाँव में चर्चा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएँ देगा? बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं और तुरंत सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊँगा। खेलें खिलौने और

खाएँ मिठाइयाँ। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सहूँ। मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी-न-कभी आएँगे। अम्माँ भी आएँगी ही। फिर इन लोगों से पूछूँगा, कितने खिलौने लोगे? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब-के-सब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसें! मेरी बला से! उसने दूकानदार से पूछा – यह चिमटा कितने का है?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा – तुम्हारे काम का नहीं है जी!

'बिकाऊ है कि नहीं?'

'बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाए हैं?'

'तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है?'

'छह पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल बैठ गया।

'ठीक-ठीक बताओ!'

'ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।'

हामिद ने कलेजा मज़बूत करके कहा – तीन पैसे लोगे?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दूकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दीं। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कंधे पर रखा, मानो बंदूक है और शान से अकड़ता हुआ संगियों के पास आया। ज़रा सुनें, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा – यह चिमटा क्यों लाया पगले; इसे क्या करेगा?

हामिद ने चिमटे को ज़मीन पर पटककर कहा – ज़रा अपना भिश्ती ज़मीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जाएँ बचा की।

महमूद बोला – तो यह चिमटा कोई खिलौना है?

हामिद – खिलौना क्यों नहीं है? अभी कंधे पर रखा, बंदूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरों का चिमटा हो गया, चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ, तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए।

तुम्हारे खिलौने कितना ही ज़ोर लगाएँ, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है – चिमटा।

सम्मी ने खँजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला – मेरी खँजरी से बदलोगे? दो आने की है।

हामिद ने खँजरी की ओर उपेक्षा से देखा – मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारे खँजरी का पेट फाड़ डाले। बस एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। ज़रा-सा पानी लग जाए तो खतम हो जाए। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आँधी में, तूफ़ान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया, लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज़ हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से ज़िद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ़ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ़। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा मिला; लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक, दो-दो साल बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फ़ौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाए, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जाएँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बंदूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाए, चोगे में मुँह छिपाकर ज़मीन पर लेट जाएँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे-हिंद लपककर शेर की गरदन पर सवार हो जाएगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर कहा – अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा – भिश्ती को एक डाँट बताएगा तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया; पर महमूद ने कुमुक पहुँचाई – अगर बचा पकड़ जाएँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा – हमें पकड़ने कौन आएगा?

नूरे ने अकड़कर कहा – यह सिपाही बंदूकवाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा – यह बेचारे हम बहादुर रुस्तमे-हिंद को पकड़ेंगे! अच्छा लाओ, अभी ज़रा कुश्ती हो जाए। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे। पकड़ेंगे क्या बेचारे!

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई – तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज़ आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जाएगा; लेकिन यह बात न हुई।

हामिद ने तुरंत जवाब दिया – आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेडियों की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में कूदना वह काम है, जो यह रुस्तमे-हिंद ही कर सकता है।

महमूद ने एक ज़ोर लगाया – वकील साहब कुर्सी-मेज़ पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बावर्चीखाने में ज़मीन पर पड़ा रहेगा।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने। चिमटा बावर्चीखाने में पड़ा रहने के सिवा और क्या कर सकता है?

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की – मेरा चिमटा बाबर्चीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुर्सी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें ज़मीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खासी गाल-गलौज थी; लेकिन कानून को पेट में डालने वाली बात छा गई। ऐसी छा गई कि तीनों सूरमा मुँह ताकते रह गए, मानो कोई धेलचा

कनकौआ किसी गंडेवाले कनकौए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकलने वाली चीज़ है। उसको पेट के अंदर डाल दिया जाना, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तमे-हिंद है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किए, पर कोई काम की चीज़ न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा? टूट-फूट जाएँगे। हामिद का चिमटा तो बना रहेगा बरसों!

संधि की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा – ज़रा अपना चिमटा दो हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किए।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया; और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए। कितने खूबसूरत खिलौने हैं!

हामिद ने हारने वालों के आँसू पोंछे – मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच! यह चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से संतोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन – लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा?

महमूद – दुआ को लिए फिरते हो। उलटे मार न पड़े। अम्माँ ज़रूर कहेंगी कि मेले में यही मिट्टी के खिलौने तुम्हें मिले?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होगी, जितनी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था और उन पैसों के इस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल ज़रूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे-हिंद है और सभी खिलौनों का बादशाह!

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिए। महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रह गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

3

ग्यारह बजे गाँव में हलचल मच गई। मेले वाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मियाँ भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई–बहन में मार–पीट हुई। दोनों खूब रोए। उसकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो–दो चाँटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अंत उनके प्रतिष्ठानुकूल इससे ज़्यादा गौरवमय हुआ। वकील ज़मीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूटियाँ गाड़ी गईं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज़ का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर बिराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो! कानून की गरमी दिमाग पर चढ़ जाएगी कि नहीं। बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं, पंखे की हवा से, या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्गलोक से मृत्युलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया। फिर बड़े ज़ोर–शोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूर पर डाल दी गई।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया; लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे–पुराने चिथड़े बिछाए गए; जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ़ से 'छोनेवाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी होनी चाहिए; महमूद

को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बंदूक लिए ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है। उसको ऐसा मरहम मिल गया है जिससे वह टूटी टाँग को आनन-फानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है। टाँग जोड़ दी जाती है लेकिन सिपाही को ज्यों ही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्यक्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था; न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफ़ा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपांतर चाहो, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज़ सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

'यह चिमटा कहाँ था?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे में?'

'तीन पैसे दिए।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, कुछ खाया न पिया। लाया क्या, चिमटा! सारे मेले में तुझे और कोई चीज़ न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया?

हामिद ने अपराधी-भाव से कहा – तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं; इसलिए मैंने उसे लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरंत स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्‌भाव और

कितना विवेक है! दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा? इतना ज़ब्त इससे हुआ कैसे? वहाँ भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्‌गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!

प्रश्न-अभ्यास

1. 'ईदगाह' कहानी के उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जिनसे ईद के अवसर पर ग्रामीण परिवेश का उल्लास प्रकट होता है।
2. 'उसके अंदर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दलबल लेकर आए, हामिद की आनंद भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।' – इस कथन से लेखक का क्या आशय है?
3. 'उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आँखें बदल लें, तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए।' – इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।
4. 'मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए है।' इस कथन के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए कि 'धर्म तोड़ता नहीं जोड़ता है।'
5. निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

   (क) कई बार यही क्रिया होती है..................आत्माओं को एक लड़ी में पिरोए हुए है।

   (ख) बुढ़िया का क्रोध..................स्वाद से भरा हुआ।
6. हामिद ने चिमटे की उपयोगिता को सिद्ध करते हुए क्या-क्या तर्क दिए?

7. गाँव से शहर जानेवाले रास्ते के मध्य पड़नेवाले स्थलों का ऐसा वर्णन लेखक ने किया है मानो आँखों के सामने चित्र उपस्थित हो रहा हो। अपने घर और विद्यालय के मध्य पड़नेवाले स्थानों का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
8. 'बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई।' इस कथन में 'बूढ़े हामिद' और 'बालिका अमीना' से लेखक का क्या आशय है? स्पष्ट कीजिए।
9. 'दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता!' – लेखक के अनुसार हामिद अमीना की दुआओं और आँसुओं के रहस्य को क्यों नहीं समझ पाया? कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
10. हामिद की जगह आप होते तो क्या करते?

योग्यता-विस्तार

1. प्रेमचंद की कहानियों का संग्रह 'मानसरोवर' नाम से आठ भागों में प्रकाशित है। अपने पुस्तकालय से लेकर उसे पढ़िए।
2. इस कहानी में लोक प्रचलित मुहावरों की भरमार है, जैसे – नानी मरना, छक्के छूटना आदि। इसमें आए मुहावरों की एक सूची तैयार कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

बला – कष्ट, आपत्ति, बहुत कष्ट देनेवाली वस्तु

बदहवास – घबराना, होश-हवास ठीक न होना

निगोड़ी – अभागी, निराश्रय, जिसका कोई न हो

चितवन – किसी की ओर देखने का ढंग, दृष्टि, कटाक्ष

वज़ू – नमाज़ से पहले यथाविधि हाथ-पाँव और मुँह धोना

सिजदा – माथा टेकना, खुदा के आगे सिर झुकाना

हिंडोला – झूला, पालना

मशक – भेड़ या बकरी की खाल को सीकर बनाया हुआ थैला जिससे भिश्ती पानी ढोते हैं

अचकन – लंबा कलीदार अँगरखा जिसमें पहले गरेबाँ से कमर-पट्टी तक अर्धचंद्राकार बंद लगते थे और अब सीधे बटन टँकते हैं

नेमत – बहुत बढ़िया

ज़ब्त – सहन करना

दामन – पल्लू, आँचल

अमरकांत

(सन् 1925–2014)

अमरकांत का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया ज़िले के नगरा गाँव में हुआ। उनका मूल नाम श्रीराम वर्मा है, उनकी आरंभिक शिक्षा बलिया में हुई। तत्पश्चात् उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। साहित्य-सृजन में उनकी बचपन से ही रुचि थी, किशोरावस्था तक आते-आते उन्होंने कहानी-लेखन प्रारंभ कर दिया था।

अमरकांत ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत पत्रकारिता से की। सबसे पहले उन्होंने आगरा से प्रकाशित होनेवाले दैनिक पत्र **सैनिक** के संपादकीय विभाग में कार्य करना आरंभ किया और यहीं वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुड़े। इसके अतिरिक्त उन्होंने **दैनिक अमृत पत्रिका** तथा **दैनिक भारत** के संपादकीय विभागों में भी काम किया। कुछ समय तक वे **कहानी** पत्रिका के संपादन से भी जुड़े रहे।

अमरकांत नयी कहानी आंदोलन के एक प्रमुख कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में शहरी और ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। वे मुख्यत: मध्यवर्ग के जीवन की वास्तविकता और विसंगतियों को व्यक्त करनेवाले कहानीकार हैं। वर्तमान समाज में व्याप्त अमानवीयता, हृदयहीनता, पाखंड, आडंबर आदि को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। आज के सामाजिक जीवन और उसके अनुभवों को अमरकांत ने यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनकी शैली की सहजता और भाषा की सजीवता पाठकों को आकर्षित करती है। आंचलिक मुहावरों और शब्दों के प्रयोग से उनकी कहानियों में जीवंतता आती है। अमरकांत की कहानियों के शिल्प में पाठकों को चमत्कृत करने का प्रयास नहीं है। वे जीवन की कथा उसी ढंग से कहते हैं, जिस ढंग से जीवन चलता है।

अमरकांत की मुख्य रचनाएँ हैं – **ज़िंदगी और जोंक, देश के लोग, मौत का नगर, मित्र-मिलन, कुहासा** (कहानी

संग्रह); ***सूखा पत्ता, ग्राम सेविका, काले उजले दिन, सुखजीवी, बीच की दीवार, इन्हीं हथियारों से*** *(उपन्यास)। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास पर उन्हें 2007 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सन् 2009 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार श्री लाल शुक्ल के साथ संयुक्त रूप से दिया गया। अमरकांत ने बाल-साहित्य भी लिखा है। इस पुस्तक के लिए उनकी कहानी* ***दोपहर का भोजन*** *ली गई है।*

दोपहर का भोजन *गरीबी से जूझ रहे एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है। इस कहानी में समाज में व्याप्त गरीबी को चिह्नित किया गया है। मुंशीजी के पूरे परिवार का संघर्ष भावी उम्मीदों पर टिका हुआ है। सिद्धेश्वरी गरीबी के अहसास को मुखर नहीं होने देती और उसकी आँच से अपने परिवार को बचाए रखती है। शिल्प की सादगी और सहज संकेतों के माध्यम से कथा को प्रस्तुत करने की कला का उत्कृष्ट रूप इस कहानी में देखने को मिलता है।*

दोपहर का भोजन

सिद्धेश्वरी ने खाना बनाने के बाद चूल्हे को बुझा दिया और दोनों घुटनों के बीच सिर रखकर शायद पैर की उँगलियाँ या ज़मीन पर चलते चींटे-चींटियों को देखने लगी। अचानक उसे मालूम हुआ कि बहुत देर से उसे प्यास लगी है। वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा-भर पानी लेकर गट-गट चढ़ा गई। खाली पानी उसके कलेजे में लग गया और वह 'हाय राम!' कहकर वहीं ज़मीन पर लेट गई।

लगभग आधे घंटे तक वहीं उसी तरह पड़ी रहने के बाद उसके जी में जी आया। वह बैठ गई, आँखों को मल-मलकर इधर-उधर देखा और फिर उसकी दृष्टि ओसारे में अध-टूटे खटोले पर सोये अपने छः वर्षीय लड़के प्रमोद पर जम गई। लड़का नंग-धड़ंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियाँ साफ़ दिखाई देती थीं। उसके हाथ-पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हँडिया की तरह फूला हुआ था। उसका मुँह खुला हुआ था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ उड़ रही थीं।

वह उठी, बच्चे के मुँह पर अपना एक फटा, गंदा ब्लाउज़ डाल दिया और एक-आध मिनट सुन्न खड़ी रहने के बाद बाहर दरवाज़े पर जाकर किवाड़ की आड़ से गली निहारने लगी। बारह बज चुके थे। धूप अत्यंत तेज़ थी और कभी-कभी एक-दो व्यक्ति सिर पर तौलिया या गमछा रखे हुए या मज़बूती से छाता ताने हुए फुर्ती के साथ लपकते हुए सामने से गुज़र जाते।

दस-पंद्रह मिनट तक वह उसी तरह खड़ी रही, फिर उसके चेहरे पर व्यग्रता फैल गई और उसने आसमान तथा कड़ी धूप की ओर चिंता से देखा। एक-दो क्षण बाद जब उसने सिर को किवाड़ से काफ़ी आगे बढ़कर गली के छोर की तरफ़ निहारा, तो उसका बड़ा लड़का रामचंद्र धीरे-धीरे घर की ओर सरकता नज़र आया।

उसने फुर्ती से एक लोटा पानी ओसारे की चौकी के पास नीचे रख दिया और चौके में जाकर खाने के स्थान को जल्दी-जल्दी पानी से लीपने-पोतने लगी। वहाँ पीढ़ा रखकर उसने सिर को दरवाज़े की ओर घुमाया ही था कि रामचंद्र ने अंदर कदम रखा।

रामचंद्र आकर धम-से चौकी पर बैठ गया और फिर वहीं बेजान-सा लेट गया। उसका मुँह लाल तथा चढ़ा हुआ था। उसके बाल अस्त-व्यस्त थे और उसके फटे-पुराने जूतों पर गर्द जमी हुई थी।

सिद्धेश्वरी की पहले हिम्मत नहीं हुई कि उसके पास जाए और वह वहीं से भयभीत हिरनी की भाँति सिर उचका-घुमाकर बेटे को व्यग्रता से निहारती रही। किंतु लगभग दस मिनट बीतने के पश्चात् भी जब रामचंद्र नहीं उठा, तो वह घबरा गई। पास जाकर पुकारा, 'बड़कू, बड़कू!' लेकिन उसके कुछ उत्तर न देने पर डर गई और लड़के की नाक के पास हाथ रख दिया। साँस ठीक से चल रही थी। फिर सिर पर हाथ रखकर देखा, बुखार नहीं था। हाथ के स्पर्श से रामचंद्र ने आँखें खोलीं। पहले उसने माँ की ओर सुस्त नज़रों से देखा, फिर झट से उठ बैठा। जूते निकालने और नीचे रखे लोटे के जल से हाथ-पैर धोने के बाद वह यंत्र की तरह चौकी पर आकर बैठ गया।

सिद्धेश्वरी ने डरते-डरते पूछा, 'खाना तैयार है, यहीं लाऊँ क्या?'

रामचंद्र ने उठते हुए प्रश्न किया, 'बाबू जी खा चुके?'

सिद्धेश्वरी ने चौके की ओर भागते हुए उत्तर दिया, 'आते ही होंगे।'

रामचंद्र पीढ़े पर बैठ गया। उसकी उम्र लगभग इक्कीस वर्ष थी। लंबा, दुबला-पतला, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें तथा होंठों पर झुर्रियाँ। वह एक स्थानीय दैनिक समाचार-पत्र के दफ़्तर में अपनी तबीयत से प्रूफ़-रीडरी का काम सीखता था। पिछले साल ही उसने इंटर पास किया था।

सिद्धेश्वरी ने खाने की थाली लाकर सामने रख दी और पास ही बैठकर पंखा करने लगी। रामचंद्र ने खाने की ओर दार्शनिक की भाँति देखा। कुल दो रोटियाँ, भर कटोरा पनियाई दाल और चने की तली तरकारी।

रामचंद्र ने रोटी के प्रथम टुकड़े को निगलते हुए पूछा, 'मोहन कहाँ है? बड़ी कड़ी धूप हो रही है।'

मोहन सिद्धेश्वरी का मँझला लड़का था। उसकी उम्र अट्ठारह वर्ष थी और वह इस साल हाई स्कूल का प्राइवेट इम्तिहान देने की तैयारी कर रहा था। वह न मालूम कब से घर से गायब था और सिद्धेश्वरी को स्वयं पता नहीं था कि वह कहाँ गया है।

किंतु सच बोलने की उसकी तबीयत नहीं हुई और उसने झूठ-मूठ कहा, 'किसी लड़के के यहाँ पढ़ने गया है, आता ही होगा। दिमाग उसका बड़ा तेज़ है और उसकी तबीयत चौबीसों घंटे पढ़ने में ही लगी रहती है। हमेशा उसी की बात करता रहता है।'

रामचंद्र ने कुछ नहीं कहा। एक टुकड़ा मुँह में रखकर भरा गिलास पानी पी गया, फिर खाने में लग गया। वह काफ़ी छोटे-छोटे टुकड़े तोड़कर उन्हें धीरे-धीरे चबा रहा था।

सिद्धेश्वरी भय तथा आतंक से अपने बेटे को एकटक निहार रही थी। कुछ क्षण बीतने के बाद डरते-डरते उसने पूछा, 'वहाँ कुछ हुआ क्या?'

रामचंद्र ने अपनी बड़ी-बड़ी भावहीन आँखों से अपनी माँ को देखा, फिर नीचा सिर करके कुछ रुखाई से बोला, 'समय आने पर सब ठीक हो जाएगा।'

सिद्धेश्वरी चुप रही। धूप और तेज़ हो गई थी। छोटे आँगन के ऊपर आसमान में बादल के एक-दो टुकड़े पाल की नावों की तरह तैर रहे थे। बाहर की गली से गुज़रते हुए खड़खड़िया इक्के की आवाज़ आ रही थी और खटोले पर सोए बालक की साँस का खर-खर शब्द सुनाई दे रहा था।

रामचंद्र ने अचानक चुप्पी को भंग करते हुए पूछा, 'प्रमोद खा चुका?'

सिद्धेश्वरी ने प्रमोद की ओर देखते हुए उदास स्वर में उत्तर दिया, 'हाँ, खा चुका।'

'रोया तो नहीं था?'

सिद्धेश्वरी फिर झूठ बोल गई, ‘आज तो सचमुच नहीं रोया। वह बड़ा ही होशियार हो गया है। कहता था, बड़का भैया के यहाँ जाऊँगा। ऐसा लड़का...’

पर वह आगे कुछ न बोल सकी, जैसे उसके गले में कुछ अटक गया। कल प्रमोद ने रेवड़ी खाने की ज़िद पकड़ ली थी और उसके लिए डेढ़ घंटे तक रोने के बाद सोया था।

रामचंद्र ने कुछ आश्चर्य के साथ अपनी माँ की ओर देखा और फिर सिर नीचा करके कुछ तेज़ी से खाने लगा।

थाली में जब रोटी का केवल एक टुकड़ा शेष रह गया, तो सिद्धेश्वरी ने उठने का उपक्रम करते हुए प्रश्न किया, ‘एक रोटी और लाती हूँ?’

रामचंद्र हाथ से मना करते हुए हड़बड़ाकर बोल पड़ा, ‘नहीं-नहीं, ज़रा भी नहीं। मेरा पेट पहले ही भर चुका है। मैं तो यह भी छोड़नेवाला हूँ। बस, अब नहीं।’

सिद्धेश्वरी ने ज़िद की, ‘अच्छा, आधी ही सही।’

रामचंद्र बिगड़ उठा, ‘अधिक खिलाकर बीमार डालने की तबीयत है क्या? तुम लोग ज़रा भी नहीं सोचते हो। बस, अपनी ज़िद! भूख रहती तो क्या ले नहीं लेता?’

सिद्धेश्वरी जहाँ की तहाँ बैठी ही रह गई। रामचंद्र ने थाली में बचे टुकड़े से हाथ खींच लिया और लोटे की ओर देखते हुए कहा, ‘माँ, पानी लाओ।’

सिद्धेश्वरी लोटा लेकर पानी लेने चली गई। रामचंद्र ने कटोरे को उँगलियों से बजाया, फिर हाथ को थाल में रख दिया। एक-दो क्षण बाद रोटी के टुकड़े को धीरे-से हाथ से उठाकर आँख से निहारा और अंत में इधर-उधर देखने के बाद टुकड़े को मुँह में इस सरलता से रख लिया, जैसे वह भोजन का ग्रास न होकर पान का बीड़ा हो।

मँझला लड़का मोहन आते ही हाथ-पैर धोकर पीढ़े पर बैठ गया। वह कुछ साँवला था और उसकी आँखें छोटी थीं। उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। वह अपने भाई ही की तरह दुबला-पतला था, किंतु उतना लंबा न था। वह उम्र की अपेक्षा कहीं अधिक गंभीर और उदास दिखाई पड़ रहा था।

सिद्धेश्वरी ने उसके सामने थाली रखते हुए प्रश्न किया, 'कहाँ रह गए थे बेटा? भैया पूछ रहा था।'

मोहन ने रोटी के एक बड़े ग्रास को निगलने की कोशिश करते हुए अस्वाभाविक मोटे स्वर में जवाब दिया, 'कहीं तो नहीं गया था। यहीं पर था।'

सिद्धेश्वरी वहीं बैठकर पंखा डुलाती हुई इस तरह बोली, जैसे स्वप्न में बड़बड़ा रही हो, 'बड़का तुम्हारी बड़ी तारीफ़ कर रहा था। कह रहा था, मोहन बड़ा दिमागी होगा, उसकी तबीयत चौबीसों घंटे पढ़ने में ही लगी रहती है।' यह कहकर उसने अपने मँझले लड़के की ओर इस तरह देखा, जैसे उसने कोई चोरी की हो।

मोहन अपनी माँ की ओर देखकर फीकी हँसी हँस पड़ा और फिर खाने में जुट गया। वह परोसी गई दो रोटियों में से एक रोटी, कटोरे की तीन-चौथाई दाल तथा अधिकांश तरकारी साफ़ कर चुका था।

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। इन दोनों लड़कों से उसे बहुत डर लगता था। अचानक उसकी आँखें भर आईं वह दूसरी ओर देखने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने मोहन की ओर मुँह फेरा, तो लड़का लगभग खाना समाप्त कर चुका था।

सिद्धेश्वरी ने चौंकते हुए पूछा, 'एक रोटी देती हूँ?'

मोहन ने रसोई की ओर रहस्यमय नेत्रों से देखा, फिर सुस्त स्वर में बोला, 'नहीं।'

सिद्धेश्वरी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'नहीं, बेटा, मेरी कसम, थोड़ी ही ले लो। तुम्हारे भैया ने एक रोटी ली थी।'

मोहन ने अपनी माँ को गौर से देखा, फिर धीरे-धीरे इस तरह उत्तर दिया, जैसे कोई शिक्षक अपने शिष्य को समझाता है, 'नहीं रे, बस। अव्वल तो अब भूख नहीं। फिर रोटियाँ तूने ऐसी बनाई हैं कि खाई नहीं जातीं। न मालूम कैसी लग रही हैं। खैर, अगर तू चाहती ही है, तो कटोरे में थोड़ी दाल दे दे। दाल बड़ी अच्छी बनी है।'

सिद्धेश्वरी से कुछ कहते न बना और उसने कटोरे को दाल से भर दिया।

मोहन कटोरे को मुँह से लगाकर सुड़-सुड़ पी ही रहा था कि मुंशी चंद्रिका प्रसाद जूतों को खस-खस घसीटते हुए आए और राम का नाम लेकर चौकी पर बैठ गए।

सिद्धेश्वरी ने माथे पर साड़ी को कुछ नीचे खिसका लिया और मोहन दाल को एक साँस में पीकर तथा पानी के लोटे को हाथ में लेकर तेज़ी से बाहर चला गया।

दो रोटियाँ, कटोरा-भर दाल तथा चने की तली तरकारी। मुंशी चंद्रिका प्रसाद पीढ़े पर पालथी मारकर बैठे रोटी के एक-एक ग्रास को इस तरह चुभला-चबा रहे थे, जैसे बूढ़ी गाय जुगाली करती है। उनकी उम्र पैंतालीस वर्ष के लगभग थी, किंतु पचास-पचपन के लगते थे। शरीर का चमड़ा झूलने लगा था, गंजी खोपड़ी आईने की भाँति चमक रही थी। गंदी धोती के ऊपर अपेक्षाकृत कुछ साफ़ बनियान तार-तार लटक रही थी।

मुंशी जी ने कटोरे को हाथ में लेकर दाल को थोड़ा सुड़कते हुए पूछा, 'बड़का दिखाई नहीं दे रहा!'

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आ रहा था कि उसके दिल में क्या हो गया है – जैसे कुछ काट रहा हो। पंखे को ज़रा और ज़ोर से घुमाती हुई बोली, 'अभी-अभी खाकर काम पर गया है। कह रहा था, कुछ दिनों में नौकरी लग जाएगी। हमेशा 'बाबू जी-बाबू जी' किए रहता है।' बोला, 'बाबू जी देवता के समान हैं।'

मुंशी जी के चेहरे पर कुछ चमक आई। शरमाते हुए पूछा, 'ऐं, क्या कहता था कि बाबू जी देवता के समान हैं? बड़ा पागल है।'

सिद्धेश्वरी पर जैसे नशा चढ़ गया था। उन्माद की रोगिणी की भाँति बड़बड़ाने लगी, 'पागल नहीं है, बड़ा होशियार है। उस ज़माने का कोई महात्मा है। मोहन तो उसकी बड़ी इज़्ज़त करता है। आज कह रहा था कि भैया की शहर में बड़ी इज़्ज़त होती है, पढ़ने-लिखनेवालों में बड़ा आदर होता है और बड़का तो छोटे भाइयों पर जान देता है। दुनिया में वह सब कुछ सह सकता है, पर यह नहीं देख सकता कि उसके प्रमोद को कुछ हो जाए।'

मुंशी जी दाल लगे हाथ को चाट रहे थे। उन्होंने सामने की ताक की ओर देखते हुए कुछ हँसकर कहा, 'बड़का का दिमाग तो खैर काफ़ी तेज़ है, वैसे लड़कपन में बड़ा नटखट भी था। हमेशा खेल-कूद में लगा रहता था, लेकिन यह भी बात थी कि जो सबक मैं उसे याद करने को देता था, उसे बर्राक रखता था। असल तो

यह है कि तीनों लड़के काफ़ी होशियार हैं। प्रमोद को कम समझती हो?' – यह कहकर वह अचानक ज़ोर से हँस पड़े।

मुंशी जी डेढ़ रोटी खा चुकने के बाद एक ग्रास से युद्ध कर रहे थे। कुछ कठिनाई होने पर एक गिलास पानी चढ़ा गए। फिर खर-खर खाँसकर खाने लगे।

फिर चुप्पी छा गई। दूर से किसी आटे की चक्की की पुक-पुक आवाज़ सुनाई दे रही थी और पास के नीम के पेड़ पर बैठा कोई पंडूक लगातार बोल रहा था।

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। वह चाहती थी कि सभी चीज़ें ठीक से पूछ ले। सभी चीज़ें ठीक से जान ले और दुनिया की हर चीज़ पर पहले की तरह धड़ल्ले से बात करे। पर उसकी हिम्मत नहीं होती थी। उसके दिल में न जाने कैसा भय समाया हुआ था।

अब मुंशी जी इस तरह चुपचाप दुबके हुए खा रहे थे, जैसे पिछले दो दिनों से मौन व्रत धारण कर रखा हो और उसको कहीं जाकर आज शाम को तोड़नेवाले हों।

सिद्धेश्वरी से जैसे नहीं रहा गया। बोली, 'मालूम होता है, अब बारिश नहीं होगी।'

मुंशी जी ने एक क्षण के लिए इधर-उधर देखा, फिर निर्विकार स्वर में राय दी, 'मक्खियाँ बहुत हो गई हैं।'

सिद्धेश्वरी ने उत्सुकता प्रकट की, 'फूफा जी बीमार हैं, कोई समाचार नहीं आया।'

मुंशी जी ने चने के दानों की ओर इस दिलचस्पी से दृष्टिपात किया, जैसे उनसे बातचीत करनेवाले हों। फिर सूचना दी, 'गंगाशरण बाबू की लड़की की शादी तय हो गई। लड़का एम.ए. पास है।'

सिद्धेश्वरी हठात चुप हो गई। मुंशी जी भी आगे कुछ नहीं बोले। उनका खाना समाप्त हो गया था और वे थाली में बचे-खुचे दानों को बंदर की तरह बीन रहे थे।

सिद्धेश्वरी ने पूछा, 'बड़का की कसम, एक रोटी देती हूँ। अभी बहुत-सी हैं।'

मुंशी जी ने पत्नी की ओर अपराधी के समान तथा रसोई की ओर कनखी से देखा, तत्पश्चात किसी घुटे उस्ताद की भाँति बोले, 'रोटी... रहने दो, पेट काफ़ी भर चुका है। अन्न और नमकीन चीज़ों से तबीयत ऊब भी गई है। तुमने व्यर्थ में कसम धरा दी। खैर, कसम रखने के लिए ले रहा हूँ। गुड़ होगा क्या?'

सिद्धेश्वरी ने बताया कि हँडिया में थोड़ा-सा गुड़ है।

मुंशी जी ने उत्साह के साथ कहा, 'तो थोड़े गुड़ का ठंडा रस बनाओ, पीऊँगा। तुम्हारी कसम भी रह जाएगी, ज़ायका भी बदल जाएगा, साथ-ही-साथ हाज़मा भी दुरुस्त होगा। हाँ, रोटी खाते-खाते नाक में दम आ गया है।' यह कहकर वे ठहाका मारकर हँस पड़े।

मुंशी जी के निबटने के पश्चात सिद्धेश्वरी उनकी जूठी थाली लेकर चौके की ज़मीन पर बैठ गई। बटलोई की दाल को कटोरे में उँड़ेल दिया, पर वह पूरा भरा नहीं। छिपुली में थोड़ी-सी चने की तरकारी बची थी, उसे पास खींच लिया। रोटियों की थाली को भी उसने पास खींच लिया, उसमें केवल एक रोटी बची थी। मोटी, भद्दी और जली उस रोटी को वह जूठी थाली में रखने जा ही रही थी कि अचानक उसका ध्यान ओसारे में सोए प्रमोद की ओर आकर्षित हो गया। उसने लड़के को कुछ देर तक एकटक देखा, फिर रोटी को दो बराबर टुकड़ों में विभाजित कर दिया। एक टुकड़े को तो अलग रख दिया और दूसरे टुकड़े को अपनी जूठी थाली में रख लिया। तदुपरांत एक लोटा पानी लेकर खाने बैठ गई। उसने पहला ग्रास मुँह में रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टपटप आँसू चूने लगे।

सारा घर मक्खियों से भनभन कर रहा था। आँगन की अलगनी पर एक गंदी साड़ी टँगी थी, जिसमें कई पैबंद लगे हुए थे। दोनों बड़े लड़कों का कहीं पता नहीं था। बाहर की कोठरी में मुंशी जी औंधे मुँह होकर निश्चिंतता के साथ सो रहे थे, जैसे डेढ़ महीने पूर्व मकान किराया नियंत्रण विभाग की क्लर्की से उनकी छँटनी न हुई हो और शाम को उनको काम की तलाश में कहीं जाना न हो!

प्रश्न-अभ्यास

1. सिद्धेश्वरी ने अपने बड़े बेटे रामचंद्र से मँझले बेटे मोहन के बारे में झूठ क्यों बोला?
2. कहानी के सबसे जीवंत पात्र के चरित्र की दृढ़ता का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
3. कहानी के उन प्रसंगों का उल्लेख कीजिए जिनसे गरीबी की विवशता झाँक रही हो।
4. 'सिद्धेश्वरी का एक से दूसरे सदस्य के विषय में झूठ बोलना परिवार को जोड़ने का अनथक प्रयास था' – इस संबंध में आप अपने विचार लिखिए।
5. 'अमरकांत आम बोलचाल की ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिससे कहानी की संवेदना पूरी तरह उभरकर आ जाती है।' कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
6. रामचंद्र, मोहन और मुंशी जी खाते समय रोटी न लेने के लिए बहाने करते हैं, उसमें कैसी विवशता है? स्पष्ट कीजिए।
7. सिद्धेश्वरी की जगह आप होते तो क्या करते?
8. रसोई संभालना बहुत जिम्मेदारी का काम है– सिद्ध कीजिए।
9. आपके अनुसार सिद्धेश्वरी के झूठ सौ सत्यों से भारी कैसे हैं? अपने शब्दों में उत्तर दीजिए।
10. आशय स्पष्ट कीजिए –
    (क) वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा भर पानी लेकर गट-गट चढ़ा गई।
    (ख) यह कहकर उसने अपने मँझले लड़के की ओर इस तरह देखा, जैसे उसने कोई चोरी की हो।

योग्यता-विस्तार

1. अपने आस-पास मौजूद समान परिस्थितियों वाले किसी विवश व्यक्ति अथवा विवशतापूर्ण घटना का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. 'भूख और गरीबी में प्राय: धैर्य और संयम नहीं टिक पाते हैं।' इसके आलोक में सिद्धेश्वरी के चरित्र पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

व्यग्रता	–	व्याकुलता, घबराया हुआ
बर्राक	–	याद रखना, चमकता हुआ
पंडूक	–	कबूतर की तरह का एक प्रसिद्ध पक्षी
कनखी	–	आँख के कोने से
ओसारा	–	बरामदा
निर्विकार	–	जिसमें कोई विकार या परिवर्तन न होता हो
छिपुली	–	खाने का छोटा बर्तन
अलगनी	–	कपड़े टाँगने के लिए बाँधी गई रस्सी
नाक में दम आना	–	परेशान होना
जी में जी आना	–	चैन आ जाना

हरिशंकर परसाई

(सन् 1922–1995)

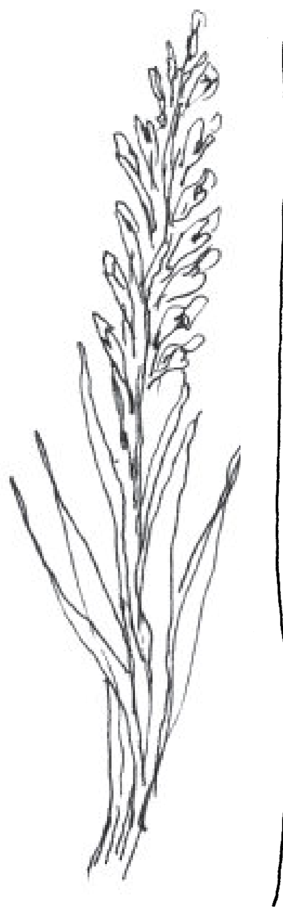

*हरिशंकर परसाई का जन्म जमानी गाँव, ज़िला होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में हुआ था। उन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. किया। कुछ वर्षों तक अध्यापन कार्य करने के पश्चात सन् 1947 से वे स्वतंत्र लेखन में जुट गए। उन्होंने जबलपुर से **वसुधा** नामक साहित्यिक पत्रिका निकाली।*

परसाई ने व्यंग्य विधा को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान की। उनके व्यंग्य-लेखों की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे समाज में आई विसंगतियों, विडंबनाओं पर करारी चोट करते हुए चिंतन और कर्म की प्रेरणा देते हैं। उनके व्यंग्य गुदगुदाते हुए पाठक को झकझोर देने में सक्षम हैं।

भाषा-प्रयोग में परसाई को असाधारण कुशलता प्राप्त है। वे प्रायः बोलचाल के शब्दों का प्रयोग सतर्कता से करते हैं। कौन सा शब्द कब और कैसा प्रभाव पैदा करेगा इसे वे बखूबी जानते थे।

*परसाई ने दो दर्जन से अधिक पुस्तकों की रचना की है, जिनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – **हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे** (कहानी-संग्रह); **रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज** (उपन्यास); **तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, पगडंडियों का ज़माना, सदाचार की तावीज़, शिकायत मुझे भी है, और अंत में** (निबंध-संग्रह); **वैष्णव की फिसलन, तिरछी रेखाएँ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर** (व्यंग्य-लेख संग्रह)। उनका समग्र साहित्य **परसाई रचनावली** के रूप में छह भागों में प्रकाशित है।*

*यहाँ संकलित रचना **टार्च बेचनेवाले** में टॉर्च के प्रतीक के माध्यम से परसाई ने आस्थाओं के बाज़ारीकरण और धार्मिक पाखंड पर प्रहार किया है।*

टार्च बेचनेवाले

वह पहले चौराहों पर बिजली के टार्च बेचा करता था। बीच में कुछ दिन वह नहीं दिखा। कल फिर दिखा। मगर इस बार उसने दाढ़ी बढ़ा ली थी और लंबा कुरता पहन रखा था।

मैंने पूछा, "कहाँ रहे? और यह दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है?"

उसने जवाब दिया, "बाहर गया था।"

दाढ़ीवाले सवाल का उसने जवाब यह दिया कि दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा।

मैंने कहा, "आज तुम टार्च नहीं बेच रहे हो?"

उसने कहा, "वह काम बंद कर दिया। अब तो आत्मा के भीतर टार्च जल उठा है। ये 'सूरजछाप' टार्च अब व्यर्थ मालूम होते हैं।"

मैंने कहा, "तुम शायद संन्यास ले रहे हो। जिसकी आत्मा में प्रकाश फैल जाता है, वह इसी तरह हरामखोरी पर उतर आता है। किससे दीक्षा ले आए?"

मेरी बात से उसे पीड़ा हुई। उसने कहा, "ऐसे कठोर वचन मत बोलिए। आत्मा सबकी एक है। मेरी आत्मा को चोट पहुँचाकर आप अपनी ही आत्मा को घायल कर रहे हैं।"

मैंने कहा, "यह सब तो ठीक है। मगर यह बताओ कि तुम एकाएक ऐसे कैसे हो गए? क्या बीवी ने तुम्हें त्याग दिया? क्या उधार मिलना बंद हो गया? क्या

साहूकारों ने ज़्यादा तंग करना शुरू कर दिया? क्या चोरी के मामले में फँस गए हो? आखिर बाहर का टार्च भीतर आत्मा में कैसे घुस गया?"

उसने कहा, "आपके सब अंदाज़ गलत हैं। ऐसा कुछ नहीं हुआ। एक घटना हो गई है, जिसने जीवन बदल दिया। उसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ। पर क्योंकि मैं आज ही यहाँ से दूर जा रहा हूँ, इसलिए आपको सारा किस्सा सुना देता हूँ।"

उसने बयान शुरू किया –

पाँच साल पहले की बात है। मैं अपने एक दोस्त के साथ हताश एक जगह बैठा था। हमारे सामने आसमान को छूता हुआ एक सवाल खड़ा था। वह सवाल था – 'पैसा कैसे पैदा करें?' हम दोनों ने उस सवाल की एक-एक टाँग पकड़ी और उसे हटाने की कोशिश करने लगे। हमें पसीना आ गया, पर सवाल हिला भी नहीं। दोस्त ने कहा – "यार, इस सवाल के पाँव ज़मीन में गहरे गड़े हैं। यह उखड़ेगा नहीं। इसे टाल जाएँ।"

हमने दूसरी तरफ़ मुँह कर लिया। पर वह सवाल फिर हमारे सामने आकर खड़ा हो गया। तब मैंने कहा – "यार, यह सवाल टलेगा नहीं। चलो, इसे हल ही कर दें। पैसा पैदा करने के लिए कुछ काम-धंधा करें। हम इसी वक्त अलग-अलग दिशाओं में अपनी-अपनी किस्मत आज़माने निकल पड़ें। पाँच साल बाद ठीक इसी तारीख को इसी वक्त हम यहाँ मिलें।"

दोस्त ने कहा – "यार, साथ ही क्यों न चलें?"

मैंने कहा – "नहीं। किस्मत आज़मानेवालों की जितनी पुरानी कथाएँ मैंने पढ़ी हैं, सबमें वे अलग-अलग दिशा में जाते हैं। साथ जाने में किस्मतों के टकराकर टूटने का डर रहता है।"

तो साहब, हम अलग-अलग चल पड़े। मैंने टार्च बेचने का धंधा शुरू कर दिया। चौराहे पर या मैदान में लोगों को इकट्ठा कर लेता और बहुत नाटकीय ढंग से कहता – "आजकल सब जगह अँधेरा छाया रहता है। रातें बेहद काली होती हैं। अपना ही हाथ नहीं सूझता। आदमी को रास्ता नहीं दिखता। वह भटक जाता है। उसके पाँव काँटों से बिंध जाते हैं, वह गिरता है और उसके घुटने लहूलुहान हो जाते हैं। उसके आसपास भयानक अँधेरा

है। शेर और चीते चारों तरफ़ घूम रहे हैं, साँप ज़मीन पर रेंग रहे हैं। अँधेरा सबको निगल रहा है। अँधेरा घर में भी है। आदमी रात को पेशाब करने उठता है और साँप पर उसका पाँव पड़ जाता है। साँप उसे डँस लेता है और वह मर जाता है।"

आपने तो देखा ही है साहब, कि लोग मेरी बातें सुनकर कैसे डर जाते थे। भर-दोपहर में वे अँधेरे के डर से काँपने लगते थे। आदमी को डराना कितना आसान है!

लोग डर जाते, तब मैं कहता – "भाइयों, यह सही है कि अँधेरा है, मगर प्रकाश भी है। वही प्रकाश मैं आपको देने आया हूँ। हमारी 'सूरज छाप' टार्च में वह प्रकाश है, जो अंधकार को दूर भगा देता है। इसी वक्त 'सूरज छाप' टार्च खरीदो और अँधेरे को दूर करो। जिन भाइयों को चाहिए, हाथ ऊँचा करें।"

साहब, मेरे टार्च बिक जाते और मैं मज़े में ज़िंदगी गुज़ारने लगा।

वायदे के मुताबिक ठीक पाँच साल बाद मैं उस जगह पहुँचा, जहाँ मुझे दोस्त से मिलना था। वहाँ दिन-भर मैंने उसकी राह देखी, वह नहीं आया। क्या हुआ? क्या वह भूल गया? या अब वह इस असार संसार में ही नहीं है?

मैं उसे ढूँढ़ने निकल पड़ा।

एक शाम जब मैं एक शहर की सड़क पर चला जा रहा था, मैंने देखा कि पास के मैदान में खूब रोशनी है और एक तरफ़ मंच सजा है। लाउडस्पीकर लगे हैं। मैदान में हज़ारों नर-नारी श्रद्धा से झुके बैठे हैं। मंच पर सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजे एक भव्य पुरुष बैठे हैं। वे खूब पुष्ट हैं, सँवारी हुई लंबी दाढ़ी है और पीठ पर लहराते लंबे केश हैं।

मैं भीड़ के एक कोने में जाकर बैठ गया।

भव्य पुरुष फ़िल्मों के संत लग रहे थे। उन्होंने गुरु-गंभीर वाणी में प्रवचन शुरू किया। वे इस तरह बोल रहे थे जैसे आकाश के किसी कोने से कोई रहस्यमय संदेश उनके कान में सुनाई पड़ रहा है जिसे वे भाषण दे रहे हैं।

वे कह रहे थे – "मैं आज मनुष्य को एक घने अंधकार में देख रहा हूँ। उसके भीतर कुछ बुझ गया है। यह युग ही अंधकारमय है। यह सर्वग्राही अंधकार संपूर्ण विश्व को अपने उदर में छिपाए है। आज मनुष्य इस अंधकार से घबरा उठा है। वह

पथभ्रष्ट हो गया है। आज आत्मा में भी अंधकार है। अंतर की आँखें ज्योतिहीन हो गई हैं। वे उसे भेद नहीं पातीं। मानव-आत्मा अंधकार में घुटती है। मैं देख रहा हूँ, मनुष्य की आत्मा भय और पीड़ा से त्रस्त है।"

इसी तरह वे बोलते गए और लोग स्तब्ध सुनते गए।

मुझे हँसी छूट रही थी। एक-दो बार दबाते-दबाते भी हँसी फूट गई और पास के श्रोताओं ने मुझे डाँटा।

भव्य पुरुष प्रवचन के अंत पर पहुँचते हुए कहने लगे – "भाइयों और बहनों, डरो मत। जहाँ अंधकार है, वहीं प्रकाश है। अंधकार में प्रकाश की किरण है, जैसे प्रकाश में अंधकार की किंचित कालिमा है। प्रकाश भी है। प्रकाश बाहर नहीं है, उसे अंतर में खोजो। अंतर में बुझी उस ज्योति को जगाओ। मैं तुम सबका उस ज्योति को जगाने के लिए आह्वान करता हूँ। मैं तुम्हारे भीतर वही शाश्वत ज्योति को जगाना चाहता हूँ। हमारे 'साधना मंदिर' में आकर उस ज्योति को अपने भीतर जगाओ।"

साहब, अब तो मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। पास के लोगों ने मुझे धक्का देकर भगा दिया। मैं मंच के पास जाकर खड़ा हो गया।

भव्य पुरुष मंच से उतरकर कार पर चढ़ रहे थे। मैंने उन्हें ध्यान से पास से देखा। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, इसलिए मैं थोड़ा झिझका। पर मेरी तो दाढ़ी नहीं थी। मैं तो उसी मौलिक रूप में था। उन्होंने मुझे पहचान लिया। बोले – "अरे तुम!" मैं पहचानकर बोलने ही वाला था कि उन्होंने मुझे हाथ पकड़कर कार में बिठा लिया। मैं फिर कुछ बोलने लगा तो उन्होंने कहा – "बँगले तक कोई बातचीत नहीं होगी। वहीं ज्ञान-चर्चा होगी।"

मुझे याद आ गया कि वहाँ ड्राइवर है।

बँगले पर पहुँचकर मैंने उसका ठाठ देखा। उस वैभव को देखकर मैं थोड़ा झिझका, पर तुरंत ही मैंने अपने उस दोस्त से खुलकर बातें शुरू कर दीं।

मैंने कहा – "यार, तू तो बिलकुल बदल गया।"

उसने गंभीरता से कहा – "परिवर्तन जीवन का अनंत क्रम है।"

मैंने कहा – "साले, फिलासफ़ी मत बघार यह बता कि तूने इतनी दौलत कैसे कमा ली पाँच सालों में?"

उसने पूछा – "तुम इन सालों में क्या करते रहे?"

मैंने कहा – "मैं तो घूम-घूमकर टार्च बेचता रहा। सच बता, क्या तू भी टार्च का व्यापारी है?"

उसने कहा – "तुझे क्या ऐसा ही लगता है? क्यों लगता है?"

मैंने उसे बताया कि जो बातें मैं कहता हूँ; वही तू कह रहा था मैं सीधे ढंग से कहता हूँ, तू उन्हीं बातों को रहस्यमय ढंग से कहता है। अँधेरे का डर दिखाकर लोगों को टार्च बेचता हूँ। तू भी अभी लोगों को अँधेरे का डर दिखा रहा था, तू भी ज़रूर टार्च बेचता है।

उसने कहा – "तुम मुझे नहीं जानते, मैं टार्च क्यों बेचूगा! मैं साधु, दार्शनिक और संत कहलाता हूँ।"

मैंने कहा – "तुम कुछ भी कहलाओ, बेचते तुम टार्च हो। तुम्हारे और मेरे प्रवचन एक जैसे हैं। चाहे कोई दार्शनिक बने, संत बने या साधु बने, अगर वह लोगों को अँधेरे का डर दिखाता है, तो ज़रूर अपनी कंपनी का टार्च बेचना चाहता है। तुम जैसे लोगों के लिए हमेशा ही अंधकार छाया रहता है। बताओ, तुम्हारे जैसे किसी आदमी ने हज़ारों में कभी भी यह कहा है कि आज दुनिया में प्रकाश फैला है? कभी नहीं कहा। क्यों? इसलिए कि उन्हें अपनी कंपनी का टार्च बेचना है। मैं खुद भर-दोपहर में लोगों से कहता हूँ कि अंधकार छाया है। बता किस कंपनी का टार्च बेचता है?"

मेरी बातों ने उसे ठिकाने पर ला दिया था। उसने सहज ढंग से कहा – "तेरी बात ठीक ही है। मेरी कंपनी नयी नहीं है, सनातन है।"

मैंने पूछा – "कहाँ है तेरी दुकान? नमूने के लिए एकाध टार्च तो दिखा। 'सूरज छाप' टार्च से बहुत ज़्यादा बिक्री है उसकी।"

उसने कहा – "उस टार्च की कोई दुकान बाज़ार में नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। मगर कीमत उसकी बहुत मिल जाती है। तू एक-दो दिन रह, तो मैं तुझे सब समझा देता हूँ।"

"तो साहब मैं दो दिन उसके पास रहा। तीसरे दिन 'सूरज छाप' टार्च की पेटी को नदी में फेंककर नया काम शुरू कर दिया।"

वह अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा। बोला – "बस, एक महीने की देर और है।"

मैंने पूछा –"तो अब कौन-सा धंधा करोगे?"

उसने कहा – "धंधा वही करूँगा, यानी टार्च बेचूँगा। बस कंपनी बदल रहा हूँ।"

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक ने टार्च बेचनेवाली कंपनी का नाम 'सूरज छाप' ही क्यों रखा?
2. पाँच साल बाद दोनों दोस्तों की मुलाकात किन परिस्थितियों में और कहाँ होती है?
3. पहला दोस्त मंच पर किस रूप में था और वह किस अँधेरे को दूर करने के लिए टार्च बेच रहा था?
4. भव्य पुरुष ने कहा – 'जहाँ अंधकार है वहीं प्रकाश है'। इसका क्या तात्पर्य है?
5. भीतर के अँधेरे की टार्च बेचने और 'सूरज छाप' टार्च बेचने के धंधे में क्या फ़र्क है? पाठ के आधार पर बताइए।
6. 'सवाल के पाँव ज़मीन में गहरे गड़े हैं। यह उखड़ेगा नहीं।' इस कथन में मुनष्य की किस प्रवृत्ति की ओर संकेत है और क्यों?
7. 'व्यंग्य विधा में भाषा सबसे धारदार है।' परसाई जी की इस रचना को आधार बनाकर इस कथन के पक्ष में अपने विचार प्रकट कीजिए।
8. आशय स्पष्ट कीजिए–

   (क) क्या पैसा कमाने के लिए मनुष्य कुछ भी कर सकता है?

(ख) प्रकाश बाहर नहीं है, उसे अंतर में खोजो। अंतर में बुझी उस ज्योति को जगाओ।

(ग) धंधा वही करूँगा, यानी टार्च बेचूँगा। बस कंपनी बदल रहा हूँ।

9. लेखक ने 'सूरज छाप' टार्च की पेटी को नदी में क्यों फेंक दिया? क्या आप भी वही करते?

10. टार्च बेचने वाले किस प्रकार की स्किल का प्रयोग करते हैं? क्या इसका 'स्किल इंडिया' प्रोग्राम से कोई संबंध है?

योग्यता-विस्तार

1. 'पैसा कमाने की लिप्सा ने आध्यात्मिकता को भी एक व्यापार बना दिया है।' इस विषय पर कक्षा में परिचर्चा कीजिए।
2. समाज में फैले अंधविश्वासों का उल्लेख करते हुए एक लेख लिखिए।
3. एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा हरिशंकर परसाई पर बनाई गई फ़िल्म देखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

गुरु गंभीर वाणी – विचारों से पुष्ट वाणी
सर्वग्राही – सबको ग्रहण करनेवाला, सबको समाहित करनेवाला
स्तब्ध – हैरान
आह्वान – पुकारना, बुलाना
शाश्वत – चिरंतन, हमेशा रहनेवाली
सनातन – सदैव रहनेवाला

रांगेय राघव

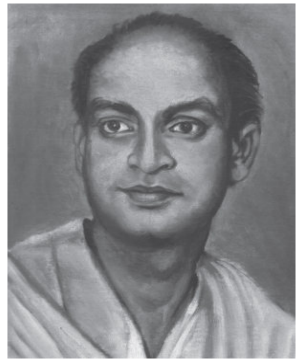

(सन् 1923-1962)

रांगेय राघव का जन्म आगरा में हुआ था। उनका मूल नाम तिरुमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य था, परंतु उन्होंने रांगेय राघव नाम से साहित्य-रचना की है। उनके पूर्वज दक्षिण आरकाट से जयपुर-नरेश के निमंत्रण पर जयपुर आए थे, जो बाद में आगरा में बस गए। वहीं उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. और पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। 39 वर्ष की अल्पायु में ही उनकी मृत्यु हो गई।

रांगेय राघव ने साहित्य की विविध विधाओं में रचना की है जिनमें कहानी, उपन्यास, कविता और आलोचना मुख्य हैं। उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं – **रामराज्य का वैभव, देवदासी, समुद्र के फेन, अधूरी मूरत, जीवन के दाने, अंगारे न बुझे, ऐयाश मुर्दे, इंसान पैदा हुआ।** उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं – **घरौंदा, विषाद-मठ, मुर्दों का टीला, सीधा-सादा रास्ता, अँधेरे के जुगनू, बोलते खंडहर** तथा **कब तक पुकारूँ।** सन् 1961 में राजस्थान साहित्य अकादमी ने उनकी साहित्य-सेवा के लिए उन्हें पुरस्कृत किया। उनकी रचनाओं का संग्रह दस खंडों में **रांगेय राघव ग्रंथावली** नाम से प्रकाशित हो चुका है।

रांगेय राघव ने 1936 से ही कहानियाँ लिखनी शुरू कर दी थीं। उन्होंने अस्सी से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। अपने कथा-साहित्य में उन्होंने जीवन के विविध आयामों को रेखांकित किया है। उनकी कहानियों में समाज के शोषित-पीड़ित मानव जीवन के यथार्थ का बहुत ही मार्मिक चित्रण मिलता है। उनकी कहानियाँ शोषण से मुक्ति का मार्ग भी दिखाती हैं। सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा उनकी कहानियों की विशेषता है। पाठ्यपुस्तक में संकलित कहानी **गूँगे** में एक गूँगे किशोर के

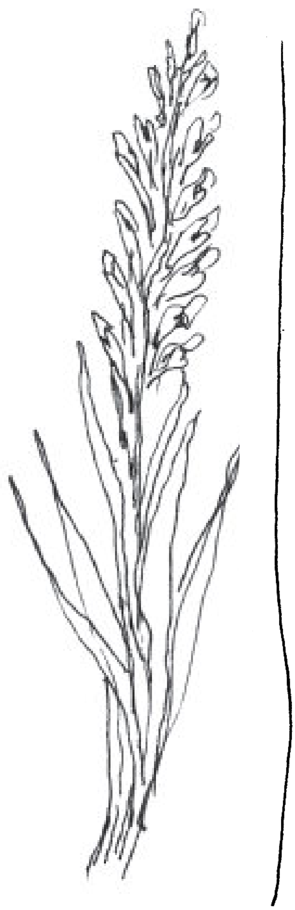

माध्यम से शोषित मानव की असहायता का चित्रण किया गया है। कभी तो वह मूक भाव से सब अत्याचार सह लेता है और कभी विरोध में आक्रोश व्यक्त करता है।

लेखक ने दिव्यांगों के प्रति समाज में व्याप्त संवेदनहीनता को रेखांकित किया है। साथ ही यह बताने की कोशिश भी की है कि उन्हें सामान्य मनुष्य की तरह मानना और समझना चाहिए एवं उनके साथ संवेदनशील व्यवहार करना चाहिए, ताकि वे इस दुनिया में अलग-थलग न पड़ने पाएँ। कहानी के माध्यम से लेखक ने यह कहा है कि समाज के जो लोग संवेदनहीन हैं, वे भी गूँगे-बहरे हैं, क्योंकि अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति वे सचेत नहीं हैं।

गूँगे

'शकुंतला क्या नहीं जानती?'

'कौन? शकुंतला! कुछ नहीं जानती!'

'क्यों साहब? क्या नहीं जानती? ऐसा क्या काम है जो वह नहीं कर सकती?'

'वह उस गूँगे को नहीं बुला सकती।'

'अच्छा, बुला दिया तो?'

'बुला दिया?'

बालिका ने एक बार कहनेवाली की ओर द्वेष से देखा और चिल्ला उठी, दूँदे!

गूँगे ने नहीं सुना। तमाम स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। बालिका ने मुँह छिपा लिया।

जन्म से वज्र बहरा होने के कारण वह गूँगा है। उसने अपने कानों पर हाथ रखकर इशारा किया। सब लोगों को उसमें दिलचस्पी पैदा हो गई, जैसे तोते को राम-राम कहते सुनकर उसके प्रति हृदय में एक आनंद-मिश्रित कुतूहल उत्पन्न हो जाता है।

चमेली ने अंगुलियों से इंगित किया – फिर?

मुँह के आगे इशारा करके गूँगे ने बताया – भाग गई। कौन? फिर समझ में आया। जब छोटा ही था, तब 'माँ' जो घूँघट काढ़ती थी, छोड़ गई, क्योंकि 'बाप', अर्थात् बड़ी-बड़ी मूँछें, मर गया था। और फिर उसे पाला है – किसने? यह तो समझ में नहीं आया, पर वे लोग मारते बहुत हैं।

करुणा ने सबको घेर लिया। वह बोलने की कितनी ज़बर्दस्त कोशिश करता है। लेकिन नतीजा कुछ नहीं, केवल कर्कश काँय-काँय का ढेर! अस्फुट ध्वनियों का वमन, जैसे आदिम मानव अभी भाषा बनाने में जी-जान से लड़ रहा हो।

चमेली ने पहली बार अनुभव किया कि यदि गले में काकल तनिक ठीक नहीं हो तो मनुष्य क्या से क्या हो जाता है। कैसी यातना है कि वह अपने हृदय को उगल देना चाहता है, किंतु उगल नहीं पाता।

सुशीला ने आगे बढ़कर इशारा किया – 'मुँह खोलो!' और गूँगे ने मुँह खोल दिया – लेकिन उसमें कुछ दिखाई नहीं दिया। पूछा – 'गले में कौआ है?' गूँगा समझ गया। इशारे से ही बता दिया – 'किसी ने बचपन में गला साफ़ करने की कोशिश में काट दिया' और वह ऐसे बोलता है जैसे घायल पशु कराह उठता है, शिकायत करता है, जैसे कुत्ता चिल्ला रहा हो और कभी-कभी उसके स्वर में ज्वालामुखी के विस्फोट की-सी भयानकता थपेड़े मार उठती है। वह जानता है कि वह सुन नहीं सकता। और बता-बताकर मुसकराता है। वह जानता है कि उसकी बोली को कोई नहीं समझता फिर भी बोलता है।

सुशीला ने कहा – इशारे गज़ब के करता है। अकल बहुत तेज़ है। पूछा – 'खाता क्या है, कहाँ से मिलता है?'

वह कहानी ऐसी है, जिसे सुनकर सब स्तब्ध बैठे हैं। हलवाई के यहाँ रात-भर लड्डू बनाए हैं, कड़ाही माँजी है, नौकरी की है, कपड़े धोए हैं, सबके इशारे हैं लेकिन –

गूँगे का स्वर चीत्कार में परिणत हो गया। सीने पर हाथ मारकर इशारा किया – 'हाथ फैलाकर कभी नहीं माँगा, भीख नहीं लेता', भुजाओं पर हाथ रखकर इशारा किया – 'मेहनत का खाता हूँ' और पेट बजाकर दिखाया 'इसके लिए, इसके लिए...'

अनाथाश्रम के बच्चों को देखकर चमेली रोती थी। आज भी उसकी आँखों में पानी आ गया। यह सदा से ही कोमल है। सुशीला से बोली – 'इसे नौकर भी तो नहीं रखा जा सकता।'

पर गूँगा उस समय समझ रहा था। वह दूध ले आता है। कच्चा मँगाना हो, तो थन काढ़ने का इशारा कीजिए; औंटा हुआ मँगवाना हो, तो हलवाई जैसे एक बर्तन

से दूध दूसरे बर्तन में उठाकर डालता है, वैसी बात कहिए। साग मँगवाना हो, तो गोल-गोल कीजिए या लंबी उँगली दिखाकर समझाइए, और भी... और भी...

और चमेली ने इशारा किया – 'हमारे यहाँ रहेगा?'

गूँगे ने स्वीकार तो किया, किंतु हाथ से इशारा किया – 'क्या देगी? खाना?'

'हाँ, कुछ पैसे' – चमेली ने सिर हिलाया। चार उँगलियाँ दिखा दीं। गूँगे ने सीने पर हाथ मारकर जैसे कहा – तैयार हैं। चार रुपये।

सुशीला ने कहा – 'पछताओगी। भला यह क्या काम करेगा?'

'मुझे तो दया आती है बेचारे पर', चमेली ने उत्तर दिया – 'न ही, बच्चों की तबीयत बहलेगी।'

घर पर बुआ मारती थी, फूफा मारता था, क्योंकि उन्होंने उसे पाला था। वे चाहते थे कि बाज़ार में पल्लेदारी करे, बारह-चौदह आने कमाकर लाए और उन्हें दे दे, बदले में वे उसके सामने बाजरे और चने की रोटियाँ डाल दें। अब गूँगा घर भी नहीं जाता। यहीं काम करता है। बच्चे चिढ़ाते हैं। कभी नाराज़ नहीं होता। चमेली के पति सीधे-सादे आदमी हैं। पल जाएगा बेचारा, किंतु वे जानते हैं कि मनुष्य की करुणा की भावना उसके भीतर गूँगेपन की प्रतिच्छाया है, वह बहुत कुछ करना चाहता है, किंतु कर नहीं पाता। इस तरह दिन बीत रहे हैं।

चमेली ने पुकारा – 'गूँगे।'

किंतु कोई उत्तर नहीं आया, उठकर ढूँढ़ा – 'कुछ पता नहीं लगा।'

बसंता ने कहा – 'मुझे तो कुछ नहीं मालूम।'

'भाग गया होगा', पति का उदासीन स्वर सुनाई दिया। सचमुच वह भाग गया था। कुछ भी समझ में नहीं आया। चुपचाप जाकर खाना पकाने लगी। क्यों भाग गया? नाली का कीड़ा! 'एक छत उठाकर सिर पर रख दी' फिर भी मन नहीं भरा। दुनिया हँसती है, हमारे घर को अब अजायबघर का नाम मिल गया है...किसलिए...

जब बच्चे और वह भी खाकर उठ गए तो चमेली बची रोटियाँ कटोरदान में रखकर उठने लगी। एकाएक द्वार पर कोई छाया हिल उठी। वह गूँगा था। हाथ से इशारा किया – 'भूखा हूँ।'

'काम तो करता नहीं, भिखारी।' फेंक दी उसकी ओर रोटियाँ। रोष से पीठ मोड़कर खड़ी हो गई। किंतु गूँगा खड़ा रहा। रोटियाँ छुईं तक नहीं। देर तक दोनों चुप रहे। फिर न जाने क्यों, गूँगे ने रोटियाँ उठा लीं और खाने लगा। चमेली ने गिलासों में दूध भर दिया। देखा, गूँगा खा चुका है। उठी और हाथ में चिमटा लेकर उसके पास खड़ी हो गई।

'कहाँ गया था?' चमेली ने कठोर स्वर से पूछा।

कोई उत्तर नहीं मिला। अपराधी की भाँति सिर झुक गया। सड़ से एक चिमटा उसकी पीठ पर जड़ दिया। किंतु गूँगा रोया नहीं। वह अपने अपराध को जानता था। चमेली की आँखों से ज़मीन पर आँसू टपक गया। तब गूँगा भी रो दिया।

और फिर यह भी होने लगा कि गूँगा जब चाहे भाग जाता, फिर लौट आता। उसे जगह-जगह नौकरी करके भाग जाने की आदत पड़ गई थी और चमेली सोचती कि उसने उस दिन भीख ली थी या ममता की ठोकर को निस्संकोच स्वीकार कर लिया था।

बसंता ने कसकर गूँगे को चपत जड़ दी। गूँगे का हाथ उठा और न जाने क्यों अपने-आप रुक गया। उसकी आँखों में पानी भर आया और वह रोने लगा। उसका रुदन इतना कर्कश था कि चमेली को चूल्हा छोड़कर आना पड़ा। गूँगा उसे देखकर इशारों से कुछ समझाने लगा। देर तक चमेली उससे पूछती रही। उसकी समझ में इतना ही आया कि खेलते-खेलते बसंता ने उसे मार दिया था।

बसंता ने कहा – 'अम्मा! यह मुझे मारना चाहता था।'

'क्यों रे?' चमेली ने गूँगे की ओर देखकर कहा। वह इस समय भी नहीं भूली थी कि गूँगा कुछ सुन नहीं सकता। लेकिन गूँगा भाव-भंगिमा से समझ गया। उसने चमेली का हाथ पकड़ लिया। एक क्षण को चमेली को लगा, जैसे उसी के पुत्र ने आज उसका हाथ पकड़ लिया था। एकाएक घृणा से उसने हाथ छुड़ा लिया। पुत्र के प्रति मंगल-कामना ने उसे ऐसा करने को मजबूर कर दिया।

कहीं उसका भी बेटा गूँगा होता तो वह भी ऐसे ही दुख उठाता! वह कुछ भी नहीं सोच सकी। एक बार फिर गूँगे के प्रति हृदय में ममता भर आई। वह लौटकर

चूल्हे पर जा बैठी, जिसमें अंदर आग थी, लेकिन उसी आग से वह सब पक रहा था जिससे सबसे भयानक आग बुझती है – पेट की आग, जिसके कारण आदमी गुलाम हो जाता है। उसे अनुभव हुआ कि गूँगे में बसंता से कहीं अधिक शारीरिक बल था। कभी भी गूँगे की भाँति शक्ति से बसंता ने उसका हाथ नहीं पकड़ा था। लेकिन फिर भी गूँगे ने अपना उठा हाथ बसंता पर नहीं चलाया।

रोटी जल रही थी। झट से पलट दी। वह पक रही थी, इसी से बसंता बसंता है...गूँगा गूँगा है...

चमेली को विस्मय हुआ। गूँगा शायद यह समझता है कि बसंता मालिक का बेटा है, उस पर वह हाथ नहीं लगा सकता। मन-ही-मन थोड़ा विक्षोभ भी हुआ, किंतु पुत्र की ममता ने इस विषय पर चादर डाल दी और फिर याद आया कि उसने उसका हाथ पकड़ा था। शायद इसीलिए कि उसे बसंता को दंड देना ही चाहिए, यह उसको अधिकार है...।

किंतु वह तब समझ नहीं सकी, और उसने सुना कि गूँगा कभी-कभी कराह उठता था। चमेली उठकर बाहर गई। कुछ सोचकर रसोई में लौट आई और रात की बासी रोटी लेकर निकली।

'गूँगे!' उसने पुकारा।

कान के न जाने किस पर्दे में कोई चेतना है कि गूँगा उसकी आवाज़ को कभी अनसुना नहीं कर सकता, वह आया। उसकी आँखों में पानी भरा था। जैसे उनमें एक शिकायत थी, पक्षपात के प्रति तिरस्कार था। चमेली को लगा कि लड़का बहुत तेज़ है। बरबस ही उसके होंठों पर मुस्कान छा गई। कहा – 'ले खा ले।' – और हाथ बढ़ा दिया।

गूँगा इस स्वर की, इस सबकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वह हँस पड़ा। अगर उसका रोना एक अजीब दर्दनाक आवाज़ थी तो यह हँसना और कुछ नहीं – एक अचानक गुर्राहट-सी चमेली के कानों में बज उठी। उस अमानवीय स्वर को सुनकर वह भीतर-ही-भीतर काँप उठी। यह उसने क्या किया था? उसने एक पशु पाला था। जिसके हृदय में मनुष्यों की-सी वेदना थी।

घृणा से विक्षुब्ध होकर चमेली ने कहा – 'क्यों रे, तूने चोरी की है?'

गूँगा चुप हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया। चमेली एक बार क्रोध से काँप उठी, देर तक उसकी ओर घूरती रही। सोचा – मारने से यह ठीक नहीं हो सकता। अपराध को स्वीकार करा दंड न देना ही शायद कुछ असर करे और फिर कौन मेरा अपना है। रहना हो तो ठीक से रहे, नहीं तो फिर जाकर सड़क पर कुत्तों की तरह जूठन पर ज़िंदगी बिताए, दर-दर अपमानित और लांछित...।

आगे बढ़कर गूँगे का हाथ पकड़ लिया और द्वार की ओर इशारा करके दिखाया – निकल जा। गूँगा जैसे समझा नहीं। बड़ी-बड़ी आँखों को फाड़े देखता रहा। कुछ कहने को शायद एक बार होंठ खुले भी, किंतु कोई स्वर नहीं निकला। चमेली वैसे ही कठोर बनी रही। अब के मुँह से भी साथ-साथ कहा – 'जाओ, निकल जाओ। ढंग से काम नहीं करना है तो तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं। नौकर की तरह रहना है रहो, नहीं तो बाहर जाओ। यहाँ तुम्हारे नखरे कोई नहीं उठा सकता। किसी को भी इतनी फुरसत नहीं है। समझे?'

और फिर चमेली आवेश में आकर चिल्ला उठी – 'मक्कार, बदमाश! पहले कहता था, भीख नहीं माँगता, और सबसे भीख माँगता है। रोज़-रोज़ भाग जाता है, पत्ते चाटने की आदत पड़ गई है। कुत्ते की दुम क्या कभी सीधी होगी? नहीं। नहीं रखना है हमें, जा, तू इसी वक्त निकल जा...'

किंतु वह क्षोभ, वह क्रोध, सब उसके सामने निष्फल हो गए; जैसे मंदिर की मूर्ति कोई उत्तर नहीं देती, वैसे ही उसने भी कुछ नहीं कहा। केवल इतना समझ सका कि मालकिन नाराज़ है और निकल जाने को कह रही हैं। इसी पर उसे अचरज और अविश्वास हो रहा है।

चमेली अपने-आप लज्जित हो गई। कैसी मूर्खा है वह! बहरे से जाने क्या-क्या कह रही थी? वही क्या कुछ सुनता है?

हाथ पकड़कर ज़ोर से एक झटका दिया और उसे दरवाज़े के बाहर धकेलकर निकाल दिया। गूँगा धीरे-धीरे चला गया। चमेली देखती रही।

करीब घंटेभर बाद शकुंतला और बसंता – दोनों चिल्ला उठे, 'अम्मा! अम्मा!'

'क्या है?' चमेली ने ऊपर ही से पूछा।

'गूँगा...', बसंता ने कहा। किंतु कहने के पहले ही नीचे उतरकर देखा – गूँगा खून से भीग रहा था। उसका सिर फट गया था। वह सड़क के लड़कों से पिटकर आया था, क्योंकि गूँगा होने के नाते वह उनसे दबना नहीं चाहता था। दरवाज़े की दहलीज़ पर सिर रखकर वह कुत्ते की तरह चिल्ला रहा था।

और चमेली चुपचाप देखती रही, देखती रही कि इस मूक अवसाद में युगों का हाहाकार भरकर गूँज रहा है।

और ये गूँगे... अनेक-अनेक हो संसार में भिन्न-भिन्न रूपों में छा गए हैं – जो कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पाते। जिनके हृदय की प्रतिहिंसा न्याय और अन्याय को परखकर भी अत्याचार को चुनौती नहीं दे सकती, क्योंकि बोलने के लिए स्वर होकर भी स्वर में अर्थ नहीं है... क्योंकि वे असमर्थ हैं।

और चमेली सोचती है, आज दिन ऐसा कौन है जो गूँगा नहीं है। किसका हृदय समाज, राष्ट्र, धर्म और व्यक्ति के प्रति विद्वेष से, घृणा से नहीं छटपटाता, किंतु फिर भी कृत्रिम सुख की छलना अपने जालों में उसे नहीं फाँस देती – क्योंकि वह स्नेह चाहता है, समानता चाहता है!

प्रश्न-अभ्यास

1. गूँगे ने अपने स्वाभिमानी होने का परिचय किस प्रकार दिया?
2. 'मनुष्य की करुणा की भावना उसके भीतर गूँगेपन की प्रतिच्छाया है।' कहानी के इस कथन को वर्तमान सामाजिक परिवेश के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
3. 'नाली का कीड़ा! 'एक छत उठाकर सिर पर रख दी' फिर भी मन नहीं भरा।' – चमेली का यह कथन किस संदर्भ में कहा गया है और इसके माध्यम से उसके किन मनोभावों का पता चलता है?
4. यदि बसंता गूँगा होता तो आपकी दृष्टि में चमेली का व्यवहार उसके प्रति कैसा होता?

5. 'उसकी आँखों में पानी भरा था। जैसे उनमें एक शिकायत थी, पक्षपात के प्रति तिरस्कार था।' क्यों?
6. 'गूँगा दया या सहानुभूति नहीं, अधिकार चाहता था' – सिद्ध कीजिए।
7. 'गूँगे' कहानी पढ़कर आपके मन में कौन से भाव उत्पन्न होते हैं और क्यों?
8. कहानी का शीर्षक 'गूँगे' है, जबकि कहानी में एक ही गूँगा पात्र है। इसके माध्यम से लेखक ने समाज की किस प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है?
9. यदि 'स्किल इंडिया' जैसा कोई कार्यक्रम होता तो क्या गूँगे को दया या सहानुभूति का पात्र बनना पड़ता?
10. निम्नलिखित गद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए –

    (क) करुणा ने सबको........................जी जान से लड़ रहा हो।

    (ख) वह लौटकर चूल्हे पर........................आदमी गुलाम हो जाता है।

    (ग) और फिर कौन........................ज़िंदगी बिताए।

    (घ) और ये गूँगे........................क्योंकि वे असमर्थ हैं?
11. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए –

    (क) कैसी यातना है कि वह अपने हृदय को उगल देना चाहता है, किंतु उगल नहीं पाता।

    (ख) जैसे मंदिर की मूर्ति कोई उत्तर नहीं देती, वैसे ही उसने भी कुछ नहीं कहा।

योग्यता-विस्तार

1. समाज में दिव्यांगों के लिए होने वाले प्रयासों में आप कैसे सहयोग कर सकते हैं?
2. दिव्यांगों की समस्या पर आधारित 'स्पर्श', 'कोशिश' तथा 'इकबाल' फ़िल्में देखिए और समीक्षा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

वज्र बहरा	–	जिसे बिलकुल सुनाई न देता हो
अस्फुट	–	अस्पष्ट
ध्वनियों का वमन	–	आवाज़ निकालने की कोशिश में ध्वनियों को जैसे-तैसे उगल देना
विक्षुब्ध	–	अशांत
कांकल	–	गले के भीतर की घाँटी
पल्लेदारी	–	पीठ पर अनाज या सामान इत्यादि ढोने का कार्य

सुधा अरोड़ा

(सन् 1948)

सुधा अरोड़ा का जन्म लाहौर (पाकिस्तान) में हुआ। उच्च शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से हुई। इसी विश्वविद्यालय के दो कॉलेजों में उन्होंने सन् 1969 से 1971 तक अध्यापन कार्य किया। कथा साहित्य में सुधा अरोड़ा एक चर्चित नाम है। उनके कई कहानी संग्रह प्रकाशित हैं – ***बगैर तराशे हुए, युद्ध-विराम, महानगर की भौतिकी, काला शुक्रवार, काँसे का गिलास*** *तथा* ***औरत की कहानी*** *(संपादित) आदि। उनकी कहानियाँ लगभग सभी भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त कई विदेशी भाषाओं में अनूदित हैं। उन्होंने भारतीय महिला कलाकारों के आत्मकथ्यों के दो संकलन* ***दहलीज़ को लाँघते हुए*** *और* ***पंखों की उड़ान*** *तैयार किए हैं।*

लेखन के स्तर पर पत्र-पत्रिकाओं में भी बराबर उनकी सक्रियता बनी हुई है। पाक्षिक ***सारिका*** *में* ***आम आदमी ज़िंदा सवाल*** *और राष्ट्रीय दैनिक* ***जनसत्ता*** *में महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर उनका साप्ताहिक स्तंभ* ***वामा*** *बहुचर्चित रहा। महिला संगठनों के सामाजिक कार्यों के प्रति उनकी सक्रियता एवं समर्थन जारी है। महिलाओं पर ही केंद्रित* ***औरत की दुनिया बनाम दुनिया की औरत*** *लेखों का संग्रह है। 'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान' द्वारा उन्हें विशेष पुरस्कार से सम्मानित किया गया।*

सुधा अरोड़ा मूलतः कथाकार हैं। उनके यहाँ स्त्री विमर्श का रूप आक्रामक न होकर सहज और संयत है। सामाजिक और मानवीय सरोकारों को वे रोचक ढंग से विश्लेषित करती हैं।

पाठ्यपुस्तक में संकलित ***ज्योतिबा फुले*** *की जीवनी में लेखिका ने ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी द्वारा समाज में किए गए शिक्षा और समाज सुधार संबंधी कार्यों का महत्त्व बताया है। सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध कर*

उन्होंने दलितों, शोषितों और स्त्रियों की समानता के हक की लड़ाई लड़ी। इसके कारण समाज का व्यापक विरोध भी उन्हें झेलना पड़ा। उस दौर की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनका संघर्ष निर्णायक महत्त्व रखता है।

ज्योतिबा फुले

यह अप्रत्याशित नहीं है कि भारत के सामाजिक विकास और बदलाव के आंदोलन में जिन पाँच समाज-सुधारकों के नाम लिए जाते हैं, उनमें महात्मा ज्योतिबा फुले के नाम का शुमार नहीं है। इस सूची को बनानेवाले उच्चवर्णीय समाज के प्रतिनिधि हैं। ज्योतिबा फुले ब्राह्मण वर्चस्व और सामाजिक मूल्यों को कायम रखनेवाली शिक्षा और सुधार के समर्थक नहीं थे। उन्होंने पूँजीवादी और पुरोहितवादी मानसिकता पर हल्ला बोल दिया। उनके द्वारा स्थापित 'सत्यशोधक समाज' और उनका क्रांतिकारी साहित्य इसका प्रमाण है। जब ब्राह्मणों ने कहा – 'विद्या शूद्रों के घर चली गई' तो फुले ने तत्काल उत्तर दिया – 'सच का सबेरा होते ही वेद डूब गए, विद्या शूद्रों के घर चली गई, भू-देव (ब्राह्मण) शरमा गए।'

महात्मा ज्योतिबा फुले ने वर्ण, जाति और वर्ग-व्यवस्था में निहित शोषण-प्रक्रिया को एक-दूसरे का पूरक बताया। उनका कहना था कि राजसत्ता और ब्राह्मण आधिपत्य के तहत धर्मवादी सत्ता आपस में साँठ-गाँठ कर इस सामाजिक व्यवस्था और मशीनरी का उपयोग करती है। उनका कहना था कि इस शोषण-व्यवस्था के खिलाफ़ दलितों के अलावा स्त्रियों को भी आंदोलन करना चाहिए।

महात्मा ज्योतिबा फुले के मौलिक विचार 'गुलामगिरी', 'शेतकर्‍यांचा आसूड' (किसानों का प्रतिशोध) 'सार्वजनिक सत्यधर्म' आदि पुस्तकों में संगृहीत हैं। उनके

विचार अपने समय से बहुत आगे थे। आदर्श परिवार के बारे में उनकी अवधारणा है – 'जिस परिवार में पिता बौद्ध, माता ईसाई, बेटी मुसलमान और बेटा सत्यधर्मी हो, वह परिवार एक आदर्श परिवार है।'

आधुनिक शिक्षा के बारे में फुले कहते हैं – 'यदि आधुनिक शिक्षा का लाभ सिर्फ़ उच्च वर्ग को ही मिलता है, तो उसमें शूद्रों का क्या स्थान रहेगा? गरीबों से कर जमा करना और उसे उच्चवर्गीय लोगों के बच्चों की शिक्षा पर खर्च करना – किसे चाहिए ऐसी शिक्षा?'

स्वाभाविक है कि विकसित वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले और सर्वांगीण समाज-सुधार न चाहनेवाले तथाकथित संभ्रान्त समीक्षकों ने महात्मा फुले को समाज-सुधारकों की सूची में कोई स्थान नहीं दिया – यह ब्राह्मणी मानसिकता की असलियत का भी पर्दाफ़ाश करता है। 1883 में ज्योतिबा फुले अपने बहुचर्चित ग्रंथ 'शेतकर्‌यांचा आसूड' के उपोद्‌घात में लिखते हैं –

'विद्या बिना मति गई
मति बिना नीति गई
नीति बिना गति गई
गति बिना वित्त गया
वित्त बिना शूद्र गए
इतने अनर्थ एक अविद्या ने किए।'

महात्मा ज्योतिबा फुले ने लिखा है – 'स्त्री-शिक्षा के दरवाज़े पुरुषों ने इसलिए बंद कर रखे हैं कि वह मानवीय अधिकारों को समझ न पाए, जैसी स्वतंत्रता पुरुष लेता है, वैसी ही स्वतंत्रता स्त्री ले तो? पुरुषों के लिए अलग नियम और स्त्रियों के लिए अलग नियम – यह पक्षपात है।' ज्योतिबा ने स्त्री-समानता को प्रतिष्ठित करनेवाली नयी विवाह-विधि की रचना की। पूरी विवाह-विधि से उन्होंने ब्राह्मण का स्थान ही हटा दिया। उन्होंने नए मंगलाष्टक (विवाह के अवसर पर पढ़े जानेवाले मंत्र) तैयार किए। वे चाहते थे कि विवाह-विधि में पुरुष प्रधान संस्कृति के समर्थक और स्त्री की गुलामगिरी सिद्ध करनेवाले जितने मंत्र हैं, वे सारे निकाल दिए जाएँ। उनके

स्थान पर ऐसे मंत्र हों, जिन्हें वर-वधू आसानी से समझ सकें। ज्योतिबा ने जिन मंगलाष्टकों की रचना की, उनमें वधू वर से कहती है – 'स्वतंत्रता का अनुभव हम स्त्रियों को है ही नहीं। इस बात की आज शपथ लो कि स्त्री को उसका अधिकार दोगे और उसे अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करने दोगे।' यह आकांक्षा सिर्फ़ वधू की ही नहीं, गुलामी से मुक्ति चाहनेवाली हर स्त्री की थी। स्त्री के अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए ज्योतिबा फुले ने हर संभव प्रयत्न किए।

1888 में जब ज्योतिबा फुले को 'महात्मा' की उपाधि से सम्मानित किया गया तो उन्होंने कहा – "मुझे 'महात्मा' कहकर मेरे संघर्ष को पूर्णविराम मत दीजिए। जब व्यक्ति मठाधीश बन जाता है तब वह संघर्ष नहीं कर सकता। इसलिए आप सब साधारण जन ही रहने दें, मुझे अपने बीच से अलग न करें।" महात्मा ज्योतिबा फुले की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे जो कहते थे, उसे अपने आचरण और व्यवहार में उतारकर दिखाते थे। इस दिशा में अग्रसर उनका पहला कदम था – अपनी पत्नी सावित्री बाई को शिक्षित करना। ज्योतिबा ने उन्हें मराठी भाषा ही नहीं, अंग्रेज़ी लिखना-पढ़ना और बोलना भी सिखाया। सावित्री बाई की भी बचपन से शिक्षा में रुचि थी और उनकी ग्राह्य-शक्ति तेज़ थी। उनके बचपन की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है, छह-सात साल की उम्र में वह हाट-बाज़ार अकेली ही चली जाती थी। एक बार सावित्री शिखल गाँव के हाट में गई। वहाँ कुछ खरीदकर खाते-खाते उसने देखा कि एक पेड़ के नीचे कुछ मिशनरी स्त्रियाँ और पुरुष गा रहे हैं। एक लाट साहब ने उसे खाते हुए और रुककर गाना सुनते देखा तो कहा, "इस तरह रास्ते में खाते-खाते घूमना अच्छी बात नहीं है।" सुनते ही सावित्री ने हाथ का खाना फेंक दिया। लाट साहब ने कहा – "बड़ी अच्छी लड़की हो तुम। यह पुस्तक ले जाओ। तुम्हें पढ़ना न आए तो भी इसके चित्र तुम्हें अच्छे लगेंगे।" घर आकर सावित्री ने वह पुस्तक अपने पिता को दिखाई। आगबबूला होकर पिता ने उसे कूड़े में फेंक दिया, "ईसाइयों से ऐसी चीज़ें लेकर तू भ्रष्ट हो जाएगी और सारे कुल को भ्रष्ट करेगी। तेरी शादी कर देनी चाहिए।" सावित्री ने वह पुस्तक उठाकर एक कोने में छुपा दी। सन् 1840 में ज्योतिबा फुले से विवाह होने पर वह अपने सामान के साथ उस किताब को सहेजकर ससुराल ले आई और शिक्षित होने के बाद वह पुस्तक पढ़ी।

14 जनवरी 1848 को पुणे के बुधवार पेठ निवासी भिड़े के बाड़े में पहली कन्याशाला की स्थापना हुई। पूरे भारत में लड़कियों की शिक्षा की यह पहली पाठशाला थी। भारत में 3000 सालों के इतिहास में इस तरह का काम नहीं हुआ था। शूद्र और शूद्रातिशूद्र लड़कियों के लिए एक के बाद एक पाठशालाएँ खोलने में ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई को लगातार व्यवधानों, अड़चनों, लांछनों और बहिष्कार का सामना करना पड़ा। ज्योतिबा के धर्मभीरू पिता ने पुरोहितों और रिश्तेदारों के दबाव में अपने बेटे और बहू को घर छोड़ देने पर मजबूर किया। सावित्री जब पढ़ाने के लिए घर से पाठशाला तक जाती तो रास्ते में खड़े लोग उसे गालियाँ देते, थूकते, पत्थर मारते और गोबर उछालते। दोनों पति-पत्नी सारी बाधाओं से जूझते हुए अपने काम में डटे रहे। 1840-1890 तक पचास वर्षों तक, ज्योतिबा और सावित्री बाई ने एक प्राण होकर अपने मिशन को पूरा किया। कहते हैं – एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले ने हर मुकाम पर कंधे-से-कंधा मिलाकर काम किया – मिशनरी महिलाओं की तरह किसानों और अछूतों की झुग्गी-झोपड़ी में जाकर लड़कियों को पाठशाला भेजने का आग्रह करना या बालहत्या प्रतिबंधक गृह में अनाथ बच्चों और विधवाओं के लिए दरवाज़े खोल देना और उनके नवजात बच्चों की देखभाल करना या महार, चमार और मांग जाति के लोगों की एक घूँट पानी पीकर प्यास बुझाने की तकलीफ़ देखकर अपने घर के पानी का हौद सभी जातियों के लिए खोल देना – हर काम पति-पत्नी ने डंके की चोट पर किया और कुरीतियों, अंध-श्रद्धा और पारंपरिक अनीतिपूर्ण रूढ़ियों को ध्वस्त कर दलितों-शोषितों के हक में खड़े हुए। आज के प्रतिस्पर्द्धात्मक समय में, जब प्रबुद्ध वर्ग के प्रतिष्ठित जाने-माने दंपती साथ रहने के कई बरसों के बाद अलग होते ही एक-दूसरे को संपूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट करने और एक-दूसरे की जड़ें खोदने पर आमादा हो जाते हैं, महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले का एक-दूसरे के प्रति और एक लक्ष्य के प्रति समर्पित जीवन एक आदर्श दांपत्य की मिसाल बनकर चमकता है।

प्रश्न-अभ्यास

1. ज्योतिबा फुले का नाम समाज सुधारकों की सूची में शुमार क्यों नहीं किया गया? तर्क सहित उत्तर लिखिए।
2. शोषण-व्यवस्था ने क्या-क्या षड्यंत्र रचे और क्यों?
3. ज्योतिबा फुले द्वारा प्रतिपादित आदर्श परिवार क्या आपके विचारों के आदर्श परिवार से मेल खाता है? पक्ष-विपक्ष में अपने उत्तर दीजिए।
4. स्त्री-समानता को प्रतिष्ठित करने के लिए ज्योतिबा फुले के अनुसार क्या-क्या होना चाहिए?
5. सावित्री बाई के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन किस प्रकार आए? क्रमबद्ध रूप में लिखिए।
6. ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई के जीवन से प्रेरित होकर आप समाज में क्या परिवर्तन करना चाहेंगे?
7. उनका दांपत्य जीवन किस प्रकार आधुनिक दंपतियों को प्रेरणा प्रदान करता है?
8. फुले दंपति ने स्त्री समस्या के लिए जो कदम उठाया था, क्या उसी का अगला चरण 'बेटी बचाओं, बेटी पढ़ाओ' कार्यक्रम है?
9. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए –
   (क) सच का सबेरा होते ही वेद डूब गए, विद्या शूद्रों के घर चली गई, भू-देव (ब्राह्मण) शरमा गए।
   (ख) इस शोषण-व्यवस्था के खिलाफ़ दलितों के अलावा स्त्रियों को भी आंदोलन करना चाहिए।
10. निम्नलिखित गद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए –
   (क) स्वतंत्रता का अनुभव............हर स्त्री की थी।
   (ख) मुझे 'महात्मा' कहकर............अलग न करें।

योग्यता-विस्तार

1. अपने आसपास के कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं से बातचीत कर उसके आधार पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

2. क्या आज भी समाज में स्त्री-पुरुष के बीच भेदभाव किया जाता है? कक्षा में चर्चा कीजिए।
3. सावित्री बाई और महात्मा फुले ने समाज-हित के जो काम किए उनकी सूची बनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

शुमार	–	गिनती, शामिल
उच्चवर्गीय	–	ऊँची जाति के
वर्चस्व	–	दबदबा, प्रधानता
कायम रखना	–	बनाए रखना, स्थिर रखना
पूँजीवादी	–	जो पूँजी को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करता है
पर्दाफ़ाश	–	भंडाफोड़, तथ्य उजागर करना
गुलामगिरी	–	लोगों से गुलामी कराना, लोगों के साथ दासों जैसा व्यवहार करना
पूर्णविराम	–	किसी बात को खत्म करना
मठाधीश	–	जो धर्म तथा वर्ग के नाम पर समूह बनाते हैं और अपना निर्णय दूसरों पर थोपते हैं
आमादा होना	–	किसी कार्य को करने के लिए दृढ़ होना
मिसाल	–	उदाहरण, आदर्श

ओमप्रकाश वाल्मीकि

(सन् 1950–2013)

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म बरला, ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। उनका बचपन सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों में बीता। पढ़ाई के दौरान उन्हें अनेक आर्थिक, सामाजिक और मानसिक कष्ट झेलने पड़े।

वाल्मीकि जी कुछ समय तक महाराष्ट्र में रहे। वहाँ वे दलित लेखकों के संपर्क में आए और उनकी प्रेरणा से डॉ. भीमराव अंबेडकर की रचनाओं का अध्ययन किया। इससे उनकी रचना-दृष्टि में बुनियादी परिवर्तन हुआ। आजकल वे देहरादून स्थित आप्टो इलैक्ट्रॉनिक्स फ़ैक्टरी (ऑर्डिनेंस फ़ैक्ट्रीज़, भारत सरकार) में एक अधिकारी के रूप में कार्यरत हैं।

हिंदी में दलित साहित्य के विकास में ओमप्रकाश वाल्मीकि की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने अपने लेखन में जातीय अपमान और उत्पीड़न का जीवंत वर्णन किया है और भारतीय समाज के कई अनछुए पहलुओं को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। वे मानते हैं कि दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। उन्होंने सृजनात्मक साहित्य के साथ-साथ आलोचनात्मक लेखन भी किया है। उनकी भाषा सहज, तथ्यपरक और आवेगमयी है। उसमें व्यंग्य का गहरा पुट भी दिखता है। नाटकों के अभिनय और निर्देशन में भी उनकी रुचि है। अपनी आत्मकथा ***जूठन*** *के कारण उन्हें हिंदी साहित्य में पहचान और प्रतिष्ठा मिली। उन्हें सन् 1993 में* ***डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार*** *और सन् 1995 में* ***परिवेश सम्मान*** *से अलंकृत किया जा चुका है।* ***जूठन*** *के अंग्रेज़ी संस्करण को* ***न्यू इंडिया बुक पुरस्कार, 2004*** *प्रदान किया गया।*

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं – ***सदियों का संताप****,* ***बस! बहुत हो चुका*** *(कविता संग्रह);* ***सलाम, घुसपैठिये*** *(कहानी संग्रह),* ***दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*** *तथा* ***जूठन*** *(आत्मकथा)।*

पाठ्यपुस्तक में संकलित कहानी ***खानाबदोश*** *में मज़दूरी करके किसी तरह गुज़र-बसर कर रहे मज़दूर वर्ग के शोषण और यातना को चित्रित किया गया है। मज़दूर वर्ग यदि ईमानदारी से मेहनत-मज़दूरी करके इज़्ज़त के साथ जीवन जीना चाहता है, तो सूबे सिंह जैसे समृद्ध और ताकतवर लोग उन्हें जीने नहीं देते। कहानी इस बात की ओर भी संकेत करती है कि मज़दूर वर्ग हमारे समाज की जातिवादी मानसिकता से नहीं उबर पाया है। कहानी में वास्तविकता उत्पन्न करने में इसके स्थानीय संवाद सहायक बने हैं।*

खानाबदोश

सुकिया के हाथ की पथी कच्ची ईंटें पकने के लिए भट्ठे में लगाई जा रही थीं। भट्ठे के गलियारे में झरोखेदार कच्ची ईंटों की दीवार देखकर सुकिया आत्मिक सुख से भर गया था। देखते-ही-देखते हज़ारों ईंटें भट्ठे के गलियारे में समा गई थीं। ईंटों के बीच खाली जगह में पत्थर का कोयला, लकड़ी, बुरादा, गन्ने की बाली भर दिए गए थे।

असगर ठेकेदार ने अपनी निगरानी में हर चीज़ तरतीब से लगवाई थी। आग लगाने से पहले भट्ठा-मालिक मुखतार सिंह ने एक-एक चीज़ का मुआयना किया था।

चौबीसों घंटे की ड्यूटी पर मज़दूरों को लगाया गया था, जो मोरियों से भट्ठे में कोयला, बुरादा आदि डाल रहे थे। भट्ठे का सबसे खतरेवाला काम था मोरी पर काम करना। थोड़ी-सी असावधानी भी मौत का कारण बन सकती थी।

भट्ठे की चिमनी धुआँ उगलने लगी थी। यह धुआँ मीलों दूर से दिखाई पड़ जाता था। हरे-भरे खेतों के बीच गहरे मटमैले रंग का यह भट्ठा एक धब्बे जैसा दिखाई पड़ता था।

मानो और सुकिया महीनाभर पहले ही इस भट्ठे पर आए थे, दिहाड़ी मज़दूर बनकर। हफ़्तेभर का काम देखकर असगर ठेकेदार ने सुकिया से कहा था कि साँचा ले लो और ईंट पाथने का काम शुरू करो। हज़ार ईंट के रेट से अपनी मज़दूरी लो। भट्ठे पर लगभग तीस मज़दूर थे जो वहीं काम करते थे। भट्ठा-मालिक मुखतार सिंह और असगर ठेकेदार साँझ होते ही शहर लौट जाते थे। शहर से दूर, दिनभर की गहमा-गहमी के बाद यह भट्ठा अँधेरे की गोद में समा जाता था।

एक कतार में बनी छोटी-छोटी झोंपड़ियों में टिमटिमाती ढिबरियाँ भी इस अँधेरे से लड़ नहीं पाती थीं। दड़बेनुमा झोंपड़ियों में झुककर घुसना पड़ता था। झुके-झुके ही बाहर आना होता था। भट्ठे का काम खत्म होते ही औरतें चूल्हा-चौका सँभाल लेती थीं। कहने भर के लिए चूल्हा-चौका था। ईंटों को जोड़कर बनाए चूल्हे में जलती लकड़ियों की चिट-पिट जैसे मन में पसरी दुश्चिंताओं और तकलीफ़ों की प्रतिध्वनियाँ थीं जहाँ सब कुछ अनिश्चित था। मानो अभी तक इस भट्ठे की ज़िंदगी से तालमेल नहीं बैठा पाई थी। बस, सुकिया की ज़िद के सामने वह कमज़ोर पड़ गई थी। साँझ होते ही सारा माहौल भाँय-भाँय करने लगता था। दिनभर के थके-हारे मज़दूर अपने-अपने दड़बों में घुस जाते थे। साँप-बिच्छू का डर लगा रहता था। जैसे समूचा जंगल झोंपड़ी के दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया है। ऐसे माहौल में मानो का जी घबराने लगता था। लेकिन करे भी तो क्या, न जाने कितनी बार सुकिया से कहा था मानो ने, "अपने देस की सूखी रोटी भी परदेस के पकवानों से अच्छी होती है।"

सुकिया के मन में एक बात बैठ गई थी। नर्क की ज़िंदगी से निकलना है तो कुछ छोड़ना भी पड़ेगा। मानो की हर बात का एक ही जवाब था उसके पास बड़े-बूढ़े कहा करे हैं कि "आदमी की औकात घर से बाहर कदम रखणें पे ही पता चले है। घर में तो चूहा भी सूरमा बणा रह। काँधे पर यो लंबा लट्ठ धरके चलणें वाले चौधरी सहर (शहर) में सरकारी अफ़सरों के आग्गे सीध्धे खड़े न हो सके हैं। बुड्ढी बकरियों की तरह मिमियाएँ हैं...और गाँव में किसी गरीब कू आदमी भी न समझे हैं..."

सुकिया की इन बातों से मानो कमज़ोर पड़ जाती थी। इसीलिए गाँव-देहात छोड़कर वे दोनों एक दिन असगर ठेकेदार के साथ इस भट्ठे पर आ गए थे।

पहले ही महीने में सुकिया ने कुछ रुपये बचा लिए थे। कई-कई बार गिनकर तसल्ली कर ली थी। धोती की गाँठ में बाँधकर अंटी में खोंस लिए थे। रुपए देखकर मानो भी खुश हो गई थी। उसे लगने लगा था कि वह अपनी ज़िंदगी के ढर्रे को बदल लेगा।

सुकिया और मानो की ज़िंदगी एक निश्चित ढर्रे पर चलने लगी थी। दोनों मिलकर पहले तगारी बनाते, फिर मानो तैयार मिट्टी लाकर देती। इस काम में उनके साथ एक तीसरा मज़दूर भी आ गया था। नाम था जसदेव। छोटी उम्र का लड़का था। असगर ठेकेदार ने उसे भी उनके साथ काम पर लगा दिया था। इससे काम में गति आ गई थी। मानो भी अब फुर्ती से साँचे में ईंटें डालने लगी थी, जिससे उनकी दिहाड़ी बढ़ गई थी।

उस रोज़ मालिक मुखतार सिंह की जगह उनका बेटा सूबेसिंह भट्ठे पर आया था। मालिक कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर चले गए थे। उनकी गैरहाज़िरी में सूबेसिंह का रौब-दाब भट्ठे का माहौल ही बदल देता था। इन दिनों में असगर ठेकेदार भीगी बिल्ली बन जाता था। दफ़्तर के बाहर एक अर्दली की ड्यूटी लग जाती थी, जो कुर्सी पर उकड़ू बैठकर दिनभर बीड़ी पीता था, आने-जानेवालों पर निगरानी रखता था। उसकी इजाज़त के बगैर कोई अंदर नहीं जा सकता था।

एक रोज़ सूबेसिंह की नज़र किसनी पर पड़ गई। तीन महीने पहले ही किसनी और महेश भट्ठे पर आए थे। पाँच-छः महीने पहले ही दोनों की शादी हुई थी।

सूबेसिंह ने उसे दफ़्तर की सेवा-टहल का काम दे दिया था। शुरू-शुरू में किसी का ध्यान इस ओर नहीं गया था। लेकिन जब रोज़ ही गारे-मिट्टी का काम छोड़कर वह दफ़्तर में ही रहने लगी तो मज़दूरों में फुसफुसाहटें शुरू हो गई थीं।

तीसरे दिन सुबह जब मज़दूर काम शुरू करने के लिए झोंपड़ियों से बाहर निकल रहे थे, किसनी हैंडपंप के नीचे खुले में बैठकर साबुन से रगड़-रगड़कर नहा रही थी। भट्ठे पर साबुन किसी के पास नहीं था। साबुन और उससे उठते झाग पर सबकी नज़र पड़ गई थी। लेकिन बोला कोई कुछ भी नहीं था। सभी की आँखों में शंकाओं के गहरे काले बादल घिर आए थे। कानाफूसी हलके-हलके शुरू हो गई थी।

महेश गुमसुम-सा अलग-अलग रहने लगा था। साँवले रंग की भरे-पूरे जिस्म की किसनी का व्यवहार महेश के लिए दुःखदाई हो रहा था। वह दिन-भर दफ़्तर में घुसी रहती थी। उसकी खिलखिलाहटें दफ़्तर से बाहर तक सुनाई पड़ने लगी थीं। महेश ने उसे समझाने की कोशिश की थी। लेकिन वह जिस राह पर चल पड़ी थी वहाँ से लौटना मुश्किल था।

भट्ठे की ज़िंदगी भी अजीब थी। गाँव-बस्ती का माहौल बन रहा था। झोंपड़ी के बाहर जलते चूल्हे और पकते खाने की महक से भट्ठे की नीरस ज़िंदगी में कुछ देर के लिए ही सही, ताज़गी का अहसास होता था। ज़्यादातर लोग रोटी के साथ गुड़ या फिर लाल मिर्च की चटनी ही खाते थे। दाल-सब्ज़ी तो कभी-कभार ही बनती थी।

शाम होते ही हैंडपंप पर भीड़ लग जाती थी। जिस्म पर चिपकी मिट्टी को जितना उतारने की कोशिश करते, वह और उतना ही भीतर उतर जाती थी। नस-नस में कच्ची मिट्टी की महक बस गई थी। इस महक से अलग भट्ठे का कोई अस्तित्व नहीं था।

किसनी और सूबेसिंह की कहानी अब काफ़ी आगे बढ़ गई थी। सूबेसिंह के अर्दली ने महेश को नशे की लत डाल दी थी। नशा करके महेश झोंपड़ी में पड़ा रहता था। किसनी के पास एक ट्रांजिस्टर भी आ गया था। सुबह-शाम भट्ठे की खामोशी में ट्रांजिस्टर की आवाज़ गूँजने लगी थी। ट्रांजिस्टर वह इतने ज़ोर से बजाती थी कि भट्ठे का वातावरण फ़िल्मी गानों की आवाज़ से गमक उठता था। शांत माहौल में संगीत-लहरियों ने खनक पैदा कर दी थी।

कड़ी मेहनत और दिन-रात भट्ठे में जलती आग के बाद जब भट्ठा खुलता था तो मज़दूर से लेकर मालिक तक की बेचैन साँसों को राहत मिलती थी। भट्ठे से पकी ईंटों को बाहर निकालने का काम शुरू हो गया था। लाल-लाल पक्की ईंटों को देखकर सुकिया और मानो की खुशी की इंतहा नहीं थी। खासकर मानो तो ईंटों को उलट-पुलटकर देख रही थी। खुद के हाथ की पथी ईंटों का रंग ही बदल गया था। उस दिन ईंटों को देखते-देखते ही मानो के मन में बिजली की तरह एक खयाल कौंधा था। इस खयाल के आते ही उसके भीतर जैसे एक साथ कई-कई भट्ठे जल रहे थे। उसने सुकिया से पूछा था, "एक घर में कितनी ईंटें लग जाती हैं?"

"बहुत...कई हज़ार...लोहा, सीमेंट, लकड़ी, रेत अलग से।" उसके मन में खयाल उभरा था। उसे तत्काल कोई आधार नहीं मिल पा रहा था। वह बेचैन हो उठी थी।

उसे खामोश देखकर सुकिया ने कहा, "चलो, काम शुरू करना है। जसदेव बाट देख रहा होगा।" सुकिया के पीछे-पीछे अनमनी ही चल दी थी मानो, लेकिन उसके

दिलो–दिमाग पर ईंटों का लाल रंग कुछ ऐसे छा गया था कि वह उसी में उलझकर रह गई थी।

झींगुरों की झिन–झिन और बीच–बीच में सियारों की आवाज़ें रात के सन्नाटे में स्याहपन घोल रही थीं। थके–हारे मज़दूर नींद की गहरी खाइयों में लुढ़क गए थे। मानो के खयालों में अभी भी लाल–लाल ईंटें घूम रही थीं। इन ईंटों से बना हुआ एक छोटा–सा घर उसके ज़ेहन में बस गया था। यह खयाल जिस शिद्दत से पुख्ता हुआ था, नींद उतनी ही दूर चली गई थी।

दूर किसी बस्ती से हलके–हलके छनकर आती मुर्गे की बाँग, रात के आखिरी पहर के अहसास के साथ ही मानो की पलकें नींद से भारी होने लगी थीं।

सुबह के ज़रूरी कामों से निबटकर जब सुकिया ने झोंपड़ी में झाँका तो वह हैरान रह गया था। इतनी देर तक मानो कभी नहीं सोती। वह परेशान हो गया था। गहरी नींद में सोई मानो का माथा उसने छूकर देखा, माथा ठंडा था। उसने राहत की साँस ली। मानो को जगाया, "इतना दिन चढ़ गया है....उठने का मन नहीं है?"

मानो अनमनी–सी उठी। कुछ देर यूँ ही चुपचाप बैठी रही। मानो का इस तरह बैठना सुकिया को अखरने लगा था, "आज क्या बात है?...जी तो ठीक है?"

मानो अपने खयालों में गुम थी। मन की बात बाहर आने के लिए छटपटा रही थी। उसने सुकिया की ओर देखते हुए पूछा, "क्यों जी...क्या हम इन पक्की ईंटों पर घर नहीं बणा सके हैं?"

मानो की बात सुनकर सुकिया आश्चर्य से उसे ताकने लगा। कल की बात वह भूल चुका था। सुकिया ने गहरे अवसाद से भरकर कहा, "पक्की ईंटों का घर दो–चार रुपए में ना बणता है।...इत्ते ढेर–से नोट लगे हैं घर बणाने में। गाँठ में नहीं है पैसा, चले हाथी खरीदने।"

"महीनेभर में जो हमने इत्ती ईंटें बणा दी हैं...क्या अपणे लिए हम ईंटें ना बणा सके हैं।" मानो ने मासूमियत से कहा।

"यह भट्ठा मालिक का है। हम ईंटें उनके लिए बणाते हैं। हम तो मज़दूर हैं। इन ईंटों पर अपणा कोई हक ना है।" सुकिया ने अपने मन में उठते दबाव को महसूस किया।

"इन ईंटों पर म्हारा कोई भी हक ना है...क्यूँ...", मानो ने ताज्जुब भरी कड़ुवाहट से कहा। उसके अंदर बवंडर मचल रहा था। कुछ देर की खामोशी के बाद मानो बोली, "हर महीने कुछ और बचत करें...ज़्यादा ईंटें बनाएँ...तब?... तब भी अपणा घर नहीं बणा सकते?" अपने भीतर कुलबुलाते सवालों को बाहर लाना चाहती थी मानो।

"इतनी मज़दूरी मिलती कहाँ है? पूरे महीने हाड़-गोड़ तोड़ के भी कितने रुपए बचे! कुल अस्सी। एक साल में एक हज़ार ईंटों के दाम अगर हमने बचा भी लिए तो घर बणाने लायक रुपया जोड़ते-जोड़ते उम्र निकल जागी। फेर भी घर ना बण पावेगा।" सुकिया ने दुखी मन से कहा।

"अगर हम रात-दिन काम करें तो भी नहीं?" मानो ने उत्साह में भरकर कहा।

"बावली हो गई है क्या?...चल उठ...चल, काम पे जाणा है। टेम ज़्यादा हो रहा है। ठेकेदार आता ही होगा। आज पूरब की टाँग काटनी है लगार के लिए।" सुकिया मानो के सवालों से घबरा गया था। उठकर बाहर जाने लगा।

"कुछ भी करो...तुम चाहो तो मैं रात-दिन काम करूँगी...मुझे एक पक्की ईंटों का घर चाहिए। अपने गाँव में...लाल-सुर्ख ईंटों का घर।" मानो के भीतर मन में हज़ार-हज़ार वसंत खिल उठे थे।

सुकिया और मानो को एक लक्ष्य मिल गया था। पक्की ईंटों का घर बनाना है...अपने ही हाथ की पकी ईंटों से। सुबह होते ही काम पर लग जाते हैं और शाम को भी अँधेरा होने तक जुटे रहते हैं। ठेकेदार असगर से लेकर मालिक तक उनके काम से खुश थे।

सूबेसिंह किसनी को शहर भी लेकर जाने लगा था। किसनी के रंग-ढंग में बदलाव आ गया था। अब वह भट्ठे पर गारे-मिट्टी का काम नहीं करती थी। महेश रोज़ रात में नशा करके मन की भड़ास निकालता था। दिन में भी अपनी झोंपड़ी में पड़ा रहता था या इधर-उधर बैठा रहता था। किसनी कई-कई दिनों तक शहर से लौटती नहीं थी। जब लौटती – थकी, निढाल और मुरझाई हुई। कपड़ों-लत्तों की अब कमी नहीं थी।

उस रोज़ सूबेसिंह ने भट्ठे पर आते ही असगर ठेकेदार से कहा था, "मानो को दफ़्तर में बुलाओ, आज किसनी की तबीयत ठीक नहीं है।"

असगर ठेकेदार ने रोकना चाहा था, "छोटे बाबू मानो को..."

बात पूरी होने से पहले ही सूबेसिंह ने उसे फटकार दिया था, "तुमसे जो कहा गया है, वही करो। राय देने की कोशिश मत करो। तुम इस भट्ठे पर मुंशी हो। मुंशी ही रहो, मालिक बनने की कोशिश करोगे तो अंजाम बुरा होगा।"

असगर ठेकेदार की घिघ्घी बँध गई थी। वह चुपचाप मानो को बुलाने चल दिया था। असगर ठेकेदार ने आवाज़ देकर कहा था, "मानो, छोटे बाबू बुला रहे हैं दफ़्तर में।"

मानो ने सुकिया की ओर देखा। उसकी आँखों में भय से उत्पन्न कातरता थी। सुकिया भी इस बुलावे पर हड़बड़ा गया था। वह जानता था। मछली को फँसाने के लिए जाल फेंका जा रहा है। गुस्से और आक्रोश से नसें खिंचने लगी थीं। जसदेव ने भी सुकिया की मनःस्थिति को भाँप लिया था। वह फुर्ती से उठा। हाथ-पाँव पर लगी गीली मिट्टी छुड़ाते हुए बोला, "तुम यहीं ठहरो...मैं देखता हूँ। चलो चाचा।" असगर के पीछे-पीछे चल दिया।

असगर ठेकेदार जानता था कि सूबेसिंह शैतान है। लेकिन चुप रहना उसकी मजबूरी बन गई थी। ज़िंदगी का खास हिस्सा उसने भट्ठे पर गुज़ारा था। भट्ठे से अलग उसका कोई वजूद ही नहीं था।

असगर ठेकेदार के साथ जसदेव को आता देखकर सूबेसिंह बिफर पड़ा था। "तुझे किसने बुलाया है?"

"जी...जो भी काम हो बताइए...मैं कर दूँगा।..." जसदेव ने विनम्रता से कहा।

"क्यों? तू उसका खसम है...या उसकी (...पर चर्बी चढ़ गई है)।" सूबेसिंह ने अपशब्दों का इस्तेमाल किया।

"बाबू जी...आप किस तरह बोल रहे हैं..." जसदेव के बात पूरी करने से पहले ही एक झन्नाटेदार थप्पड़ उसके गाल पर पड़ा।

"जानता नहीं...भट्ठे की आग में झोंक दूँगा...किसी को पता भी नहीं चलेगा। हड्डियाँ तक नहीं मिलेंगी राख से... समझा।" सूबेसिंह ने उसे धकिया दिया। जसदेव गिर पड़ा था।

जब तक वह सँभल पाता। लात–घूँसो से सूबेसिंह ने उसे अधमरा कर दिया था। चीख–पुकार सुनकर मज़दूर उनकी ओर दौड़ पड़े थे। मज़दूरों को एक साथ आता देखकर सूबेसिंह जीप में बैठ गया था। देखते–ही–देखते जीप शहर की ओर दौड़ गई थी। असगर ठेकेदार दफ़्तर में जा घुसा था।

सुकिया और मानो जसदेव को उठाकर झोंपड़ी में ले गए थे। वह दर्द से कराह रहा था। मानो ने उसकी चोटों पर हल्दी लगा दी थी। सुकिया गुस्से में काँप रहा था। मानो के अवचेतन में असंख्य अँधेरे नाच रहे थे। वह किसनी नहीं बनना चाहती थी। इज़्ज़त की ज़िंदगी जीने की अदम्य लालसा उसमें भरी हुई थी। उसे एक घर चाहिए था – पक्की ईंटों का, जहाँ वह अपनी गृहस्थी और परिवार के सपने देखती थी।

समूचा दिन अदृश्य भय और दहशत में बीता था। जसदेव को हलका बुखार हो गया था। वह अपनी झोंपड़ी में पड़ा था। सुकिया उसके पास बैठा था। आज की घटना से मज़दूर डर गए थे। उन्हें लग रहा था कि सूबेसिंह किसी भी वक्त लौटकर आ सकता है। शाम होते ही भट्ठे पर सन्नाटा छा गया था। सब अपने–अपने खोल में सिमट गए थे। बूढ़ा बिलसिया जो अकसर बाहर पेड़ के नीचे देर रात तक बैठा रहता था, आज शाम होते ही अपनी झोंपड़ी में जाकर लेट गया था। उसके खाँसने की आवाज़ भी आज कुछ धीमी हो गई थी। किसनी की झोंपड़ी से ट्रांज़िस्टर की आवाज़ भी नहीं आ रही थी।

बीच–बीच में हैंडपंप की खंच–खंच ध्वनि इस खामोशी में विघ्न डाल रही थी। पंप जसदेव की झोंपड़ी के ठीक सामने था। सभी को पानी के लिए इस पंप पर आना पड़ता था।

भट्ठे पर दवा–दारू का कोई इंतज़ाम नहीं था। कटने–फटने पर घाव पर मिट्टी लगा देना था। कपड़ा जलाकर राख भर देना ही दवाई की जगह काम आते थे।

मानो ने अधूरे मन से चूल्हा जलाया था। रोटियाँ सेंककर सुकिया के सामने रख दी थी। सुकिया ने भी अनिच्छा से एक रोटी हलक के नीचे उतारी थी। उसकी भूख जैसे अचानक मर गई थी। मानो को लेकर उसकी चिंता बढ़ गई थी। उसने निश्चय कर लिया था वह मानो को किसनी नहीं बनने देगा।

मानो भी गुमसुम अपने आपसे ही लड़ रही थी। बार-बार उसे लग रहा था कि वह सुरक्षित नहीं है। एक सवाल उसे खाए जा रहा था– क्या औरत होने की यही सज़ा है। वह जानती थी कि सुकिया ऐसा-वैसा कुछ नहीं होने देगा। वह महेश की तरह नहीं है। भले ही यह भट्ठा छोड़ना पड़े। भट्ठा छोड़ने के खयाल से ही वह सिहर उठी। नहीं...भट्ठा नहीं छोड़ना है। उसने अपने आपको आश्वस्त किया, अभी तो पक्की ईंटों का घर बनाना है।

मानो रोटियाँ लेकर बाहर जाने लगी तो सुकिया ने टोका, "कहाँ जा रही है?"

"जसदेव भूखा-प्यासा पड़ा है। उसे रोट्टी देणे जा रही हूँ।" मानो ने सहज भाव से कहा।

बामन तेरे हाथ की रोट्टी खावेगा।...अक्ल मारी गई तेरी," सुकिया ने उसे रोकना चाहा।

"क्यों मेरे हाथ की रोट्टी में ज़हर लगा है?" मानो ने सवाल किया। पल-भर रुककर बोली, "बामन नहीं भट्ठा मज़दूर है वह...म्हारे जैसा।"

चारों तरफ़ सन्नाटा था। जसदेव की झोंपड़ी में ढिबरी जल रही थी। मानो ने झोंपड़ी का दरवाज़ा ठेला "जी कैसा है?" भीतर जाते हुए मानो ने पूछा। जसदेव ने उठने की कोशिश की। उसके मुँह से दर्द की आह निकली।

"कमबख्त कीड़े पड़के मरेगा। हाथ-पाँव टूट-टूटकर गिरेंगे...आदमी नहीं जंगली जिनावर है।" मानो ने सूबेसिंह को कोसते हुए कहा।

जसदेव चुपचाप उसे देख रहा था।

"यह ले...रोट्टी खा ले। सुबे से भूखा है। दो कौर पेट में जाएँगे तो ताकत तो आवेगी बदन में," मानो ने रोटी और गुड़ उसके आगे रख दिया था। जसदेव कुछ अनमना-सा हो गया था। भूख तो उसे लगी थी। लेकिन मन के भीतर कहीं हिचक थी। घर-परिवार से बाहर निकले ज़्यादा समय नहीं हुआ था। खुद वह कुछ भी बना नहीं पाया था। शरीर का पोर-पोर टूट रहा था।

"भूख नहीं है।" जसदेव ने बहाना किया।

"भूख नहीं है या कोई और बात है..." मानो ने जैसे उसे रंगे हाथों पकड़ लिया था।

"और क्या बात हो सकती है?..." जसदेव ने सवाल किया।

"तुम्हारे भइया कह रहे थे कि तुम बामन हो...इसीलिए मेरे हाथ की रोटी नहीं खाओगे। अगर यो बात है तो मैं ज़ोर ना डालूँगी...थारी मर्जी...औरत हूँ...पास में कोई भूखा हो...तो रोटी का कौर गले से नीचे नहीं उतरता है।...फिर तुम तो दिन-रात साथ काम करते हो..., मेरी खातिर पिटे...फिर यह बामन म्हारे बीच कहाँ से आ गया...?" मानो रुआँसी हो गई थी। उसका गला रुँध गया था।

रोटी लेकर वापस लौटने के लिए मुड़ी। जसदेव में साहस नहीं था उसे रोक लेने के लिए। उनके बीच जुड़े तमाम सूत्र जैसे अचानक बिखर गए थे।

अपनी झोंपड़ी में आकर चुपचाप लेट गई थी मानो। बिना कुछ खाए। दिन-भर की घटनाएँ उसके दिमाग में खलबली मचा रही थीं। जसदेव भूखा है, यह अहसास उसे परेशान कर रहा था। जसदेव को लेकर उसके मन में हलचल थी। उसे लग रहा था— जैसे जसदेव का साथ उन्हें ताकत दे रहा है। ऐसी ताकत जो सूबेसिंह से लड़ने में हौसला दे सकती है। दो से तीन होने का सुख मानो महसूस करने लगी थी।

सुकिया भी चुपचाप लेटा हुआ था। उसकी भी नींद उड़ चुकी थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, क्या करे, इन्हीं हालात में गाँव छोड़ा था। वे ही फिर सामने खड़े थे। आखिर जाएँ तो कहाँ? सूबेसिंह से पार पाना आसान नहीं था। सुनसान जगह है कभी भी हमला कर सकता है। या फिर मानो को...विचार आते ही वह काँप गया था। उसने करवट बदली। मानो जाग रही थी। उसे अपनी ओर खींचकर सीने से चिपटा लिया था।

जसदेव ने भी पूरी रात जागकर काटी थी। सूबेसिंह का गुस्सैल चेहरा बार-बार सामने आकर दहशत पैदा कर रहा था। उसे लगने लगा था कि जैसे वह अचानक किसी षड्यंत्र में फँस गया है। उसे यह अंदाज़ा नहीं था कि सूबेसिंह मारपीट करेगा। ऐसी कल्पना भी उसे नहीं थी। वह डर गया था। उसने तय कर लिया था, कि चाहे जो हो, वह इस पचड़े में नहीं पड़ेगा।

सुबह होते ही वह असगर ठेकेदार से मिला था। असगर ही उसे शहर से अपने साथ लाया था। जसदेव ने असगर ठेकेदार से अपने मन की बात कही। ठेकेदार ने उसे समझाते

हुए कहा था, "अपने काम से काम रखो। क्यों इनके चक्कर में पड़ते हो।"

जसदेव के बदले हुए व्यवहार को मानो ने ताड़ लिया था। लेकिन उसने कोई प्रतिक्रिया ज़ाहिर नहीं की थी। वह सहजता से अपने काम में लगी थी। वह जानती थी कि उनके बीच एक फ़ासला आ गया है। लेकिन वह चुप थी।

सूबेसिंह को भी लगने लगा था कि मानो को फुसलाना आसान नहीं है। उसकी तमाम कोशिश निरर्थक साबित हुई थी। इसीलिए वह मानो और सुकिया को परेशान करने पर उतर आया था। उसने असगर ठेकेदार से भी कह दिया था कि उससे पूछे बगैर उन्हें मज़दूरी का भुगतान न करे, न कोई रियायत ही बरते उनके साथ।

मानो से कुछ छुपा नहीं था। सूबेसिंह की हरकतों पर उसकी नज़र थी। उसने अपने आप में निश्चय कर लिया था कि वह उसका मुकाबला करेगी। उठते-बैठते उसके मन में एक ही खयाल था। पक्की ईंटों का घर बनवाना है। लेकिन सूबेसिंह इस खयाल में बाधक बन रहा था।

सुकिया और मानो दिन-रात काम में जुटे थे। फिर भी हर महीने वे ज़्यादा कुछ बचा नहीं पा रहे थे। पिछले दिनों उन्होंने दुगुनी ईंटें पाथी थीं। उनके उत्साह में कोई कमी नहीं थी। एक ही उद्देश्य था– पक्की ईंटों का घर बनाना है। इसीलिए सूबेसिंह की ज़्यादतियों को वे सहन कर रहे थे। लेकिन एक तड़प थी दोनों में, जो उन्हें सँभाले हुए थी।

सूबेसिंह नित नए बहाने ढूँढ़ लेता था, उन्हें तंग करने के, एक शीत युद्ध जारी था उनके बीच, सुकिया से ईंट पाथने का साँचा वापस ले लिया गया था। उसे भट्ठे की मोरी का काम दे दिया था। मोरी का काम खतरनाक था। मानो डर गई थी। लेकिन सुकिया ने उसे हिम्मत बँधाई थी, "काम से क्यूँ डरना...।"

सुकिया का साँचा जसदेव को दे दिया गया था। साँचा मिलते ही जसदेव के रंग बदल गए थे। वह मानो पर हुकुम चलाने लगा था। मानो चुपचाप काम में लगी रहती थी।

"कल तड़के ईंट पाथनी है। ईंटें हटाकर जगह बना दे।" जसदेव आदेश देकर अपनी झोंपड़ी की ओर चला गया था। मानो ने पाथी ईंटों को दीवार की शक्ल में लगा दिया था। कच्ची ईंटों को सुखाने के लिए दो, खड़ी दो आड़ी ईंटें रखकर जालीदार दीवार बना दी थी। ईंट पाथने की जगह खाली करके ही मानो लौटकर झोंपड़ी में गई थी।

हैंडपंप पर भीड़ थी। सभी मज़दूर काम खत्म करके हाथ-मुँह धोने के लिए आ गए थे।

सुबह होने से पहले ही मानो उठ गई थी। उसे काम पर जाने की जल्दी थी। चारों तरफ़ अँधेरा था। सुबह होने का वह इंतज़ार करना नहीं चाहती थी। उसने जल्दी-जल्दी सुबह के काम निबटाए और ईंट पाथने के लिए निकल पड़ी थी। सूरज निकलने में अभी देर थी। जसदेव से पहले ही वह काम पर पहुँच जाती थी।

इक्का-दुक्का मज़दूर ही इधर-उधर दिखाई पड़ रहे थे। वह तेज़ कदमों से ईंट पाथने की ज़गह पर पहुँच गई थी। वहाँ का दृश्य देखकर अवाक रह गई थी। सारी ईंटें टूटी-फूटी पड़ी थीं। जैसे किसी ने उन्हें बेदर्दी से रौंद डाला था। ईंटों की दयनीय अवस्था देखकर उसकी चीख निकल गई थी। वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगी थी। आवाज़ सुनकर मज़दूर इकट्ठा हो गए थे।

जितने मुँह उतनी बातें, सब अपनी-अपनी अटकलें लगा रहे थे। रात में आँधी-तूफ़ान भी नहीं आया था। न ही किसी जंगली जानवर का ही यह काम हो सकता है। कई लोगों का कहना था, किसी ने जान-बूझकर ईंटें तोड़ी हैं।

मानो का हृदय फटा जा रहा था। टूटी-फूटी ईंटों को देखकर वह बौरा गई थी।

जैसे किसी ने उसके पक्की ईंटों के मकान को ही धराशाई कर दिया था।

जसदेव काफ़ी देर बाद आया था। वह निरपेक्ष भाव से चुपचाप खड़ा था। जैसे इन टूटी-फूटी ईंटों से उसका कुछ लेना-देना ही न हो।

सुकिया भी हो-हल्ला सुनकर मोरी का काम छोड़कर आया था। ईंटों की हालत देखकर उसका भी दिल बैठने लगा था। उसकी जैसे हिम्मत टूट गई थी। वह

फटी-फटी आँखों से ईंटों को देख रहा था। सुकिया को देखते ही मानो और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी थी। सुकिया ने मानो की आँखों से बहते तेज़ अँधड़ों को देखा और उनकी किरकिराहट अपने अंतर्मन में महसूस की। सपनों के टूट जाने की आवाज़ उसके कानों को फाड़ रही थी।

असगर ठेकेदार ने साफ़ कह दिया था। टूटी-फूटी ईंटें हमारे किस काम की? इनकी मज़दूरी हम नहीं देंगे। असगर ठेकेदार ने उनकी रही-सही उम्मीदों पर भी पानी फेर दिया था। मानो ने सुकिया की ओर डबडबाई आँखों से देखा। सुकिया के चेहरे पर तूफ़ान में घर टूट जाने की पीड़ा छलछला आई थी। उसे लगने लगा था, जैसे तमाम लोग उसके खिलाफ़ हैं। तरह-तरह की बाधाएँ उसके सामने खड़ी की जा रही हैं। वहाँ रुकना उसके लिए कठिन हो गया था।

उसने मानो का हाथ पकड़ा, "चल! ये लोग म्हारा घर ना बणने देंगे।" पक्की ईंटों के मकान का सपना उनकी पकड़ से फिसलकर और दूर चला गया था।

भट्ठे से उठते काले धुएँ ने आकाश तले एक काली चादर फैला दी थी। सब कुछ छोड़कर मानो और सुकिया चल पड़े थे। एक खानाबदोश की तरह, जिन्हें एक घर चाहिए था, रहने के लिए। पीछे छूट गए थे कुछ बेतरतीब पल, पसीने के अक्स जो कभी इतिहास नहीं बन सकेंगे। खानाबदोश ज़िंदगी का एक पड़ाव था यह भट्ठा।

सुकिया के पीछे-पीछे चल पड़ने से पहले मानो ने जसदेव की ओर देखा था। मानो को यकीन था, जसदेव उनका साथ देगा। लेकिन जसदेव को चुप देखकर उसका विश्वास टुकड़े-टुकड़े हो गया था। मानो के सीने में एक टीस उभरी थी। सर्द साँस में बदलकर मानो को छलनी कर गई थी। उसके होंठ फड़फड़ाए थे कुछ कहने के लिए लेकिन शब्द घुटकर रह गए थे। सपनों के काँच उसकी आँख में किरकिरा रहे थे। वह भारी मन से सुकिया के पीछे-पीछे चल पड़ी थी, अगले पड़ाव की तलाश में, एक दिशाहीन यात्रा पर।

प्रश्न-अभ्यास

1. जसदेव की पिटाई के बाद मज़दूरों का समूचा दिन कैसा बीता?
2. मानो अभी तक भट्ठे की ज़िंदगी से तालमेल क्यों नहीं बैठा पाई थी?
3. असगर ठेकेदार के साथ जसदेव को आता देखकर सूबे सिंह क्यों बिफर पड़ा और जसदेव को मारने का क्या कारण था?
4. जसदेव ने मानो के हाथ का खाना क्यों नहीं खाया?
5. लोगों को क्यों लग रहा था कि किसी ने जानबूझकर मानो की ईटें गिराकर रौंदा है?
6. मानो को क्यों लग रहा था कि किसी ने उसकी पक्की ईटों के मकान को ही धराशाई कर दिया है?
7. 'चल! ये लोग म्हारा घर ना बणने देंगे।' – सुकिया के इस कथन के आधार पर कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
8. 'खानाबदोश' कहानी में आज के समाज की किन समस्याओं को रेखांकित किया गया है? इन समस्याओं के प्रति कहानीकार के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।
9. सुकिया ने जिन समस्याओं के कारण गाँव छोड़ा वही समस्या शहर में भट्ठे पर उसे झेलनी पड़ी – मूलत: वह समस्या क्या थी?
10. 'स्किल इंडिया' जैसा कार्यक्रम होता तो क्या तब भी सुकिया और मानो को खानाबदोश जीवन व्यतित करना पड़ता?
11. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए –

    (क) अपने देस की सूखी रोटी भी परदेस के पकवानों से अच्छी होती है।

    (ख) इत्ते ढेर से नोट लगे हैं घर बणाने में। गाँठ में नहीं है पैसा, चले हाथी खरीदने।

    (ग) उसे एक घर चाहिए था – पक्की ईंटों का, जहाँ वह अपनी गृहस्थी और परिवार के सपने देखती थी।

योग्यता-विस्तार

1. अपने आसपास के क्षेत्र में जाकर ईंटों के भट्ठे को देखिए तथा ईंटें बनाने एवं उन्हें पकाने की प्रक्रिया का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. भट्ठा-मज़दूरों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
3. जाति प्रथा पर एक निबंध लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पाथना - साँचे की सहायता से या यों ही हाथों से थोप-पीटकर ईंट या उपला तैयार करना

मुआयना - निरीक्षण

दड़बा - मुर्गी इत्यादि को रखने के लिए बनाया गया छोटा घर

अंटी - गाँठ, कमर के ऊपर धोती की लपेट जिसका इस्तेमाल रुपये-पैसे रखने के लिए होता है

शिद्दत से - तीव्रता से

अंजाम - परिणाम

गजानन माधव मुक्तिबोध

(सन् 1917-1964)

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म श्योपुर कस्बा, ग्वालियर, मध्य प्रदेश में हुआ था। उनके पिता पुलिस विभाग में सब-इंस्पेक्टर थे। बार-बार पिता की बदली होते रहने के कारण मुक्तिबोध की पढ़ाई का क्रम टूटता-जुड़ता रहा, इसके बावजूद उन्होंने सन् 1954 में नागपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. की डिग्री प्राप्त की। पिता के व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण उनमें ईमानदारी, न्यायप्रियता और दृढ़ इच्छाशक्ति के गुण विकसित हुए। लंबे समय तक **नया खून** (साप्ताहिक) का संपादन करने के बाद उन्होंने दिग्विजय महाविद्यालय, राजनाँदगाँव (मध्य प्रदेश) में अध्यापन कार्य किया।

मुक्तिबोध का पूरा जीवन संघर्षों और विरोधों से भरा रहा। उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा का अध्ययन किया, जिसका प्रभाव उनकी कविताओं पर दिखाई देता है। पहली बार उनकी कविताएँ सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित **तारसप्तक** में छपीं। कविता के अतिरिक्त उन्होंने कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि भी लिखी है जो कवि द्वारा लिखे गए गद्य का अद्भुत नमूना है। मुक्तिबोध एक समर्थ पत्रकार भी थे। उनकी ये विशेषताएँ अगली पीढ़ी को रचनात्मक ऊर्जा देती रही हैं।

मुक्तिबोध नयी कविता के प्रमुख कवि हैं। उनकी संवेदना और ज्ञान का दायरा अत्यंत व्यापक है। गहन विचारशीलता और विशिष्ट भाषा-शिल्प के कारण उनके साहित्य की एक अलग पहचान है। स्वतंत्र भारत के मध्यवर्ग की ज़िंदगी की विडंबनाओं और विद्रूपताओं का चित्रण उनके साहित्य में है और साथ ही एक बेहतर मानवीय समाज-व्यवस्था के निर्माण की आकांक्षा भी। मुक्तिबोध के साहित्य की एक बड़ी विशेषता है आत्मालोचन की प्रवृत्ति।

मुक्तिबोध के काव्य-संग्रह हैं – **चाँद का मुँह टेढ़ा है** तथा **भूरी-भूरी खाक धूल। नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र,**

कामायनी : एक पुनर्विचार, एक साहित्यिक की डायरी *आदि उनकी आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। छह खंडों में प्रकाशित* ***मुक्तिबोध रचनावली*** *में उनकी सारी रचनाएँ अब एक साथ उपलब्ध हैं। यहाँ उनकी प्रसिद्ध पुस्तक* ***एक साहित्यिक की डायरी*** *का एक निबंध प्रस्तुत है।*

नए की जन्म कुंडली : एक *में लेखक ने व्यक्ति और समाज के बाहरी तथा आंतरिक परिवर्तन के फलस्वरूप प्राप्त चेतना को 'नए' के संदर्भों में देखने की कोशिश की है। लेखक का मानना है कि सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिवर्तन के फलस्वरूप प्राप्त यथार्थ की वैज्ञानिक चेतना को ही 'नया' मानना चाहिए। लेखक का यह भी कहना है कि 'संघर्ष और विरोध' के निष्कर्ष को व्यावहारिकता में न जीने के कारण ही हम पुराने को तो छोड़ देते हैं, किंतु 'नए' को वास्तविक रूप से अपना नहीं पाते।*

नए की जन्म कुंडली : एक

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ, जिसे (क्षमा कीजिए) मैं एक ज़माने में बहुत बुद्धिमान समझता था। मुझे उससे बहुत आशाएँ थीं कि वह आगे चलकर एक मेधावी, प्रतिभाशाली पुरुष निकलेगा। लोग समझते थे कि मैं उस व्यक्ति को अनुचित महत्त्व दे रहा हूँ। मुझे लगता था कि वह व्यक्ति हमारी भारतीय परंपरा का एक विचित्र परिणाम है। वह अपने विचारों को अधिक गंभीरतापूर्वक लेता था। वे उसके लिए धूप और हवा जैसे स्वाभाविक प्राकृतिक तत्त्व थे। शायद इससे भी अधिक। दरअसल, उसके लिए न वे विचार थे, न अनुभूति। वे उसके मानसिक भूगोल के पहाड़, चट्टान, खाइयाँ, ज़मीन, नदियाँ, झरने, जंगल और रेगिस्तान थे। मुझे यह भान होता रहता कि वह व्यक्ति अपने को प्रकट करते समय, स्वयं की सभी इंद्रियों से काम लेते हुए, एक आंतरिक यात्रा कर रहा है। वह अपने विचारों या भावों को केवल प्रकट ही नहीं करता था, बल्कि उन्हें स्पर्श करता था, सूँघता था, उनका आकार-प्रकार, रंग-रूप और गति बता सकता था, मानो उसके सामने वे प्रकट साक्षात और जीवंत हों। उसका दिमाग लोहे का एक शिकंजा था या सुनार की एक छोटी-सी चिमटी, जो बारीक-से-बारीक और बड़ी-से-बड़ी बात को सूक्ष्म रूप से और मज़बूती से पकड़कर सामने रख देती है।

लेकिन यह बात पुरानी हो गई। अब मुझे लगता है कि मैं भी बुद्धिमान हो गया हूँ। मुझे ऐसा लगता कि मेरे दोस्त की बुद्धिमत्ता का कारण उसकी ज़िंदगी ही ज़्यादा थी, न कि केवल मस्तिष्क-तंतुओं की हलचल।

बारह वर्षों बाद जब एकाएक मेरी उससे मुलाकात हुई, तब आनंद और आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। आनंद से भी ज़्यादा आश्चर्य। नदियों की दो धाराओं के बीच इतने बड़े-बड़े पहाड़ आ गए थे कि उन्होंने हमारी दिशाएँ भी बदल दी थीं। जब फिर से मुलाकात हुई तो स्वभावतः हमारा ध्यान इन पहाड़ों की लंबाई-चौड़ाई, ऊँचाई-नीचाई पर गया। बारह वर्ष बाद, अब जो हम दो हो गए हैं, तो किस तरह?

उसके बाल सफ़ेद हो गए थे। लेकिन यह कहना मुश्किल था कि वह नौजवान नहीं है। यों कहिए की वह भूतपूर्व नौजवान था। मतलब यह कि प्रभाव उसके वर्तमान रंग-रूप का न होकर उसके भूतपूर्व रंग-रूप का होता था। मुझे वह प्रभाव अच्छा लगता। जी चाहता कि उसके बारे में रोमैंटिक कल्पना की जाए। लेकिन यह कहना मुश्किल था कि उसकी सुंदरता उसके रूप की थी, या उसके माथे पर पड़ी हुई रेखाओं की। कम-से-कम मुझे तो वे लकीरें अच्छी लगतीं। खूबसूरत कागज़ सुंदर तो होता ही है, लेकिन यदि वह कोरा हुआ, और उसमें कोई मर्म-वचन लिखा हुआ न रहे तो, सौंदर्य में रहस्य ही क्या रहा? सौंदर्य में रहस्य न हो तो वह एक खूबसूरत चौखटा है।

सामने पीपल का वृक्ष है। चाँदनी में उसके पत्ते चमचमाते काँप रहे हैं। चाँदनी और उसमें चित्रित हुई छायाएँ हमारे मनोलोक को एक नई दिशा दे रही हैं। मुझे मालूम था कि मेरे मित्र के लिए शैले की 'ओड टु वैस्ट विंड' उतनी ही दूर है जितना मेरे लिए 'स्क्वेअर रूट ऑफ़ माइनस वन' लेकिन इसके बावजूद वे दूरियाँ हमारी पहचानी हुई थीं, और शायद इसीलिए वे प्रिय भी थीं।

जब-जब मुझे दूरियों का भान होता है, तब मुझे अच्छा भी लगता है और बुरा भी। अच्छा इसलिए कि दूरी हमारी गति को एक चुनौती है और बुरा इसलिए कि मित्रों के बीच दूरी खटकती है। हम एक ही भाषा का उपयोग तो करते हैं लेकिन अभिधार्थ एक होते हुए भी ध्वन्यार्थ और व्यंग्यार्थ अलग-अलग हो जाते हैं।

यह दूरी के कारण है। दूरी पर विजय पाना मानव-स्वभाव है। वह एक साहस-रोमांस है। अब हमें एक-दूसरे को फिर से खोजना-पाना है।

एक तरह से मुझे खुशी भी थी कि मैं उसे कतई भूल गया था और उससे बहुत दूर निकल गया था। शायद यह आवश्यक भी था। नहीं तो मैं उससे आच्छन्न हो जाता। मेरी अपनी दृष्टि से वह असाधारण और असामान्य था। एक असाधारणता और क्रूरता भी उसमें थी। निर्दयता भी उसमें थी। वह अपनी एक धुन, अपने एक विचार या एक कार्य पर सबसे पहले खुद को, और उसके साथ लोगों को कुर्बान कर सकता था। इस भीषण त्याग के कारण, उसके अपने आत्मीयों का उसके विरुद्ध युद्ध होता, तो वह उसकी क्षति भी बरदाश्त कर लेता। उसकी ज़िंदगी के इस बुनियादी तथ्य से मैंने हमेशा वैर किया। जब वह राजनीति में उतरा तो मैंने उसके घरवालों के सामने गरजकर यह आरोप लगाया कि वह उसका पलायन है, अपना उत्तरदायित्व वहन न करने की प्रवृत्ति है। मैंने उससे यह भी कहा कि वह राजनीतिक व्यक्ति है ही नहीं। राजनीति के साथ जब वह साहित्य में उतरा तब मुझे कुछ अच्छा लगा। लेकिन तब तक उसकी हालत बिगड़ चुकी थी। घर के विरोध और बाहर के विरोध से वह जर्जर हो गया था। लेकिन बेहद ज़िद्दी होने के सबब वह अड़ा रहा। और तब से हम एक दूसरे से दूर-दूर होते चले गए।

लेकिन आज मैं यह सोचता हूँ कि सांसारिक समझौते से ज़्यादा विनाशक कोई चीज़ नहीं– खास तौर पर वहाँ, जहाँ किसी अच्छी महत्त्वपूर्ण बात करने के मार्ग में अपने या अपने जैसे लोग और पराए लोग आड़े आते हों। जितनी ज़बरदस्त उनकी बाधा होगी, उतनी ही कड़ी लड़ाई भी होगी, अथवा उतना ही निम्नतम समझौता होगा।

इस भीषण संघर्ष की हृदय भेदक प्रक्रिया में से गुज़रकर उस व्यक्ति का निजत्व कुछ ऐंड़ा-वेंड़ा, कुछ विचित्र अवश्य हो गया था। किंतु सबसे बड़ी बात यह थी कि उसकी बाज़ू सही थी। इसलिए वह असामान्य था।

दूसरे शब्दों में, मैं सामान्य उसको समझता हूँ, जिसमें अपने भीतर के असामान्य के उग्र आदेश का पालन करने का मनोबल न हो। मैं अपने को ऐसा ही आदमी

समझता हूँ। मैं मात्र सामान्य हूँ (मैं नामी-गिरामी हूँ, यह बात अलग है)। और चूँकि वह व्यक्ति हमेशा मेरे भीतर के असामान्य को उकसा देता था, इसीलिए अपने भीतर के उस उकसे हुए असामान्य की रोशनी में, मैं एक ओर स्वयं को हीन अनुभव करता, तो दूसरी ओर ठीक वही असामान्य मेरी कल्पना और भावना को उत्तेजित करके मुझे, अपने से वृहत और व्यापक जो भी है, उसमें डुबो देता – चाहे वह इंटीग्रल केलक्युलस हो, सुदूर नेब्यूला हो, या कोई ऐतिहासिक कांड हो, अथवा कोई दार्शनिक सिद्धांत हो या विशाल सामाजिक लक्ष्य हो। इसलिए मैं अपने और अपने मित्र के ज़रिए असामान्य के अंत:चरित्र और सामान्य के दबाव को भली-भाँति जानता था।

लेकिन मेरी गति और दृष्टि कुछ और थी। जब मैं कोई काम करता, तो इसलिए कि उससे लोग खुश होते हैं। वह काम करता तो सिर्फ़ इसलिए कि एक बार कोई काम हाथ में लेने पर उसे अधिकारी ढंग से भली-भाँति कर ही डालना चाहिए। मेरी व्यावहारिक सामान्य बुद्धि थी। उसकी कार्य-शक्ति, आत्मप्रकटीकरण की एक निर्द्वंद्व शैली। हम दोनों में दो ध्रुवों का भेद था। ज़िंदगी में मैं सफल हुआ, वह असफल। प्रतिष्ठित, भद्र और यशस्वी मैं कहलाया। वह नामहीन और आकारहीन रह गया। लेकिन अपनी इस हालत की उसे कतई परवाह नहीं थी। इसका मुझे बहुत बुरा लगता, क्योंकि वस्तुत: वह मेरी यशस्विता को भी बड़ी सत्ता के रूप में स्वीकार न कर पाता।

इतने वर्षों बाद मेरी ज़िंदगी में जब वह वापस आया, तो मुझे लगा कि यह उस उल्का पिंड की भाँति है जो सैकड़ों वर्षों के अवकाश के बाद सूर्य के पास आकर एक चक्कर लगा लेता है, और पुन: अपने आकाशमार्ग पर निकल जाता है। इस सुदूर यात्रा के उसके अनुभव की कीमत मैं जानता हूँ, भले ही किन्हीं अप्रत्याशित संघर्षों में टूट-फूटकर, वह धूल बनता हुआ खरबों मील दूर के किसी अँधेरे शून्य में खो जाए।

किंतु आज उसने मुझसे कहा कि उसकी पूरी ज़िंदगी भूल का एक नक्शा है। मैं उसके विषाद को समझ गया। वह ज़िंदगी में छोटी-छोटी सफलताएँ चाहता था। उसके पास तो सिर्फ़ एक भव्य असफलता है (यह मेरी टिप्पणी है, उसकी नहीं)

मैंने सिर्फ़ इतना ही जवाब दिया, "लेकिन नक्शा तो है! यहाँ तो न गलत का नक्शा है, न सही का!"

मैंने उसका दिल बँधाने की कोशिश की और मैं कर ही क्या सकता था! मनुष्य के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह थोड़ी-बहुत सांसारिक सफलता की इच्छा रखे। किन्हीं असावधान क्षणों में ही, उसने मुझसे कहा कि वह स्वयं भूल का एक नक्शा है। वरना वह ऐसा नहीं कहता। लेकिन आज का ज़माना कैसा है, जबकि बुलबुल भी यह चाहती है कि वह उल्लू क्यों न हुई!

चाँदनी में एक जादू होता है। लेकिन यह जादू अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग है। न मालूम हमारी बात कहाँ से शुरू हुई। मैं डर-डरकर उससे बात करता जा रहा था। कहीं ऐसा न हो कि उसे जाने-अनजाने मुझसे कोई चोट पहुँचे क्योंकि उसने अपने विचारों के लिए खून बहाया है, ज़िंदगी खत्म की है। इसीलिए मैं धीरे-धीरे उसकी बात सुनता जा रहा था। और जहाँ मतभेद व्यक्त करना हो वहाँ मैं, अपनी आदत के अनुसार उत्तेजित होने के बजाय, मुसकराकर बात कह देता!

मैंने उससे पूछा, "पिछले बीस वर्षों की सबसे महान घटना कौन-सी है?"

एक मिनट तक उसने मेरी तरफ़ देखा और फिर छूटते ही कहा, "संयुक्त परिवार का ह्रास!"

मैं स्तब्ध हो गया।

उसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर खिलखिलाते हुए कहा, "और इस तथ्य का साहित्य से बहुत बड़ा संबंध है।"

चारों ओर चाँदनी की रहस्यमय मधुरता फैली हुई थी। चारों ओर ठंडा एकांत फैला हुआ था। मेरी अजीब मनोस्थिति हो गई। मैं अपने पड़ोसियों की ज़िंदगियाँ ढूँढ़ने लगा, अपने परिचितों का जीवन तलाशने लगा। एक अनइच्छित बेचैनी मुझमें फैल गई। हाँ, यह सही है कि ज़िंदगी और ज़माना बदलता जा रहा था। किंतु मैं परिवर्तन के परिणामों को देखने का आदी था, परिवर्तन की प्रक्रिया को नहीं।

एक बात कह दूँ – आजकल की आवश्यकताओं के अनुसार मैं चित्रकला और नृत्यकला से लेकर मानववंश शास्त्र तक, सबकी जानकारी रखता हूँ। इस संबंध में

बहुतेरे दिलचस्प तथ्य मेरे दिलो दिमाग के पिछले पॉकिट में रखे हुए हैं। इसलिए मुझसे कोई ज़्यादा गड़बड़ नहीं कर सकता। जब मेरे मित्र ने एकदम संयुक्त परिवार की बात कही तो मैंने उसका इम्तिहान लेने की ज़िद करके उससे पूछा, "और इन वर्षों में सबसे बड़ी भूल कौन सी हुई?"

एक मिनट के लिए वह चुप रहा, फिर उसने जवाब दिया, "राजनीति के पास समाज-सुधार का कोई कार्यक्रम न होना। साहित्य के पास सामाजिक सुधार का कोई कार्यक्रम न होना। सबने सोचा कि हम जनरल (सामान्य) बातें करके, सिर्फ़ और एकमात्र राजनीतिक या साहित्यिक आंदोलन के ज़रिए, वस्तुस्थिति में परिवर्तन कर सकेंगे। फलतः सामाजिक सुधार का कार्य केवल अप्रत्यक्ष प्रभावों को सौंप दिया गया...।"

"देखते नहीं हो, आज़ादी के मिलने के बाद जातिवाद का उदय क्यों हुआ - खासकर राजनीतिक संस्थाओं के भीतर!...सामाजिक सुधार का कार्य केवल अप्रत्यक्ष प्रभावों को सौंप देने के कारण ही साहित्य में भी गड़बड़ है।"

उसकी यह उक्ति मुझे बड़ी हास्यास्पद प्रतीत हुई। उसमें मुझे मूर्खता के विशाल दृश्य दिखाई देने लगे। उसने अपनी बात को रबर – जैसा तान दिया है – ऐसा मुझे लगा।

उसने अविश्वास से मेरी आँखों की तरफ देखा। शायद यह सही है कि मैं उसे बेवकूफ़ मान रहा हूँ।

रात में, और वह भी चाँदनी रात में, सामने के सेमल के झाड़ पर बैठे हुए कुछ कौवे चौंक पड़े। शायद किसी चमगादड़ ने वहाँ झपट्टा मारा हो। कुछ कौवे उड़े, पेड़ के आसपास कुछ देर मँडराए और फिर किसी डाल पर जाकर बैठ गए।

लेकिन मेरा मित्र तैश में था। उसने कहा, "समाज में वर्ग हैं, श्रेणियाँ हैं। श्रेणियों में परिवार हैं। समाज की एक बुनियादी इकाई परिवार भी है। समाज की अच्छाई-बुराई परिवार के माध्यम से व्यक्त होती है। मनुष्य के चरित्र का विकास परिवार में होता है। बच्चे पलते हैं, उन्हें सांस्कृतिक शिक्षा मिलती है। वे अपनी सारी अच्छाइयाँ-बुराइयाँ वहाँ से लेते हैं। हमारे साहित्य तथा राजनीति के पास ऐसी कोई दृष्टि नहीं है जो परिवार को लागू हो..."

एक मिनट के लिए वह चुप रहा और फिर आगे बढ़ता गया।

"ज़माने के साथ, संयुक्त सामंती परिवार का ह्रास हुआ। उन विचारों और संस्कारों के प्रति विद्रोह भी किया गया, जो सामंती परिवार में पाए जाते थे।"

"लेकिन उसके बाद क्या हुआ? लड़के बाहर राजनीति या साहित्य के मैदान में खेलते, और घर आकर वैसा ही सोचते या करते, जो सोचा या किया जाता रहा। समाज में, बाहर, पूँजी या धन की सत्ता से विद्रोह की बात की गई, लेकिन घर में नहीं। वह शिष्टता और शील के बाहर की बात थी। मतलब यह कि अन्यायपूर्ण व्यवस्था को चुनौती घर में नहीं, घर के बाहर दी गई। घर का संघर्ष कठिन था। उसमें भावनाओं की टकराहट उन्हीं से होती थी, जो अपने प्राण के अंश थे। इसीलिए न केवल उस संघर्ष को टाल दिया गया, वरन एक अजीब ढंग का समझौता किया गया। यह हुआ! मैं कहता हूँ, यह हुआ! मानो इसे!"

मुझे लगा कि वह मुझे गाली दे रहा है! एक ठंडी लहर मेरे पूरे शरीर में दौड़ गई। फिर भी चूँकि मुझे लगा कि उसकी बात अभी अधूरी ही है, इसलिए मैं चुप रहा।

वह बोला, "इसलिए पुराने सामंती अवशेष बड़े मज़े में हमारे परिवारों में पड़े हुए हैं। पुराने के प्रति और नए के प्रति इस प्रकार एक बहुत भयानक अवसरवादी दृष्टि अपनाई गई है। इसीलिए सिर्फ़ एक सप्रश्नता है। प्रश्न है, वैज्ञानिक पद्धति का अवलंबन करके उत्तर खोज निकालने की न जल्दी है, न तबीयत है, न कुछ। मैं मध्यवर्गीय शिक्षित परिवारों की बात कर रहा हूँ।"

"जो पुराना है, अब वह लौटकर आ नहीं सकता। लेकिन नए ने पुराने का स्थान नहीं लिया। धर्म-भावना गई, लेकिन वैज्ञानिक बुद्धि नहीं आई। धर्म ने हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष को अनुशासित किया था। वैज्ञानिक मानवीय दर्शन ने, वैज्ञानिक मानवीय दृष्टि ने, धर्म का स्थान नहीं लिया इसलिए केवल हम अपनी अंत:प्रवृत्तियों के यंत्र से चालित हो उठे। उस व्यापक, उच्चतर, सर्वतोमुखी मानवीय अनुशासन की हार्दिक सिद्धि के बिना हम 'नया-नया' चिल्ला तो उठे, लेकिन वह – 'नया' क्या है – हम नहीं जान सके! क्यों? मान-मूल्य, नया इंसान परिभाषाहीन और निराकार हो गए। वे दृढ़ और नया जीवन, नए व्यापक मानसिक सत्ता के अनुशासन का रूप धारण न कर सके। वे धर्म और दर्शन का स्थान न ले सके।"

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक ने व्यक्ति को हमारी भारतीय परंपरा का विचित्र परिणाम क्यों कहा है?
2. 'सौंदर्य में रहस्य न हो तो वह एक खूबसूरत चौखटा है।' व्यक्ति के व्यक्तित्व के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।
3. सामान्य-असामान्य तथा साधारण-असाधारण के अंतर को व्यक्ति और लेखक के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।
4. 'उसकी पूरी ज़िंदगी भूल का एक नक्शा है।' इस कथन द्वारा लेखक व्यक्ति के बारे में क्या कहना चाहता है?
5. पिछले बीस वर्षों की सबसे महान घटना संयुक्त परिवार का ह्रास है – क्यों और कैसे?
6. इन वर्षों में सबसे बड़ी भूल है, 'राजनीति के पास समाज-सुधार का कोई कार्यक्रम न होना' – इस संदर्भ में आप अपने विचार लिखिए।
7. 'अन्यायपूर्ण व्यवस्था को चुनौती घर में नहीं, घर के बाहर दी गई।' – इससे लेखक का क्या अभिप्राय है?
8. 'जो पुराना है, अब वह लौटकर आ नहीं सकता। लेकिन नए ने पुराने का स्थान नहीं लिया।' इस नए और पुराने के अंतर्द्वंद्व को स्पष्ट कीजिए।
9. निम्नलिखित गद्यांशों की व्याख्या कीजिए–

   (क) इस भीषण संघर्ष की हृदय भेदक............इसलिए वह असामान्य था।

   (ख) लड़के बाहर राजनीति या साहित्य के मैदान में............ घर के बाहर दी गई।

   (ग) इसलिए पुराने सामंती अवशेष बड़े मज़े............ शिक्षित परिवारों की बात कर रहा हूँ।

   (घ) मान-मूल्य, नया इंसान............ वे धर्म और दर्शन का स्थान न ले सके।
10. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए–

    (क) सांसारिक समझौते से ज़्यादा विनाशक कोई चीज़ नहीं।

    (ख) बुलबुल भी यह चाहती है कि वह उल्लू क्यों न हुई!

(ग) मैं परिवर्तन के परिणामों को देखने का आदी था, परिवर्तन की प्रक्रिया को नहीं।
(घ) जो पुराना है, अब वह लौटकर आ नहीं सकता।

योग्यता-विस्तार

1. 'विकास की ओर बढ़ते चरण और बिखरते मानव-मूल्य' विषय पर कक्षा में परिचर्चा कीजिए।
2. 'आधुनिकता की इस दौड़ में हमने क्या खोया है और क्या पाया है?' – अपने विद्यालय की पत्रिका के लिए इस विषय पर अध्यापकों का साक्षात्कार लीजिए।
3. 'सौंदर्य में रहस्य न हो तो वह एक खूबसूरत चौखटा है।' लेखक के इस वाक्य को केंद्र में रखते हुए 'सौंदर्य क्या है' इस पर चर्चा करें।

शब्दार्थ और टिप्पणी

शिकंजा	–	जकड़
मस्तिष्क-तंतु	–	मस्तिष्क की शिराएँ
रोमैंटिक कल्पना	–	ऐसी कल्पना जिनमें प्रेम और रोमांच हो
'ओड टु वैस्ट विंड'	–	अंग्रेज़ी कवि शैले की रचना
स्क्वेअर रूट ऑफ़ माइनस वन	–	गणित का एक सूत्र
अभिधार्थ	–	शब्द का सामान्य अर्थ, तीन शब्द शक्तियों* में से एक का बोध करानेवाली

* **शब्द शक्तियाँ**

अभिधा - शब्दों की वह शक्ति जिससे उनके नियत अर्थ ही निकलते हैं। कोई शब्द सुनते ही उसके अर्थ का जो बोध होता है वह इसी शक्ति के द्वारा होता है। इसे वाच्यार्थ भी कहते हैं।
लक्षणा - शब्द की वह शक्ति जो मुख्य अर्थ के बाधित होने पर किसी विशेष प्रायोजन के लिए मुख्य अर्थ से संबद्ध किसी लक्ष्यार्थ का बोध कराती है।
व्यंजना - शब्द की वह शक्ति जिससे वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ (अर्थात अभिधा और लक्षणा-शक्ति से निकलने वाले अर्थों) के अतिरिक्त ध्वनि के रूप में कुछ विशेष अर्थ निकलता है।

ध्वन्यार्थ	–	वह अर्थ जिसका बोध व्यंजना शब्द शक्ति से होता है
व्यंग्यार्थ	–	किसी शब्द या वाक्य का उसके साधारण अर्थ से भिन्न, वह अर्थ जो उसकी व्यंजना शक्ति से निकलता है, जैसे यदि हम किसी से व्यंग्यपूर्वक कहें – आपने हम पर बहुत कृपा की, तो इसका व्यंग्यार्थ होगा कि आपने हमारे साथ बहुत अनुचित व्यवहार किया।
आच्छन्न	–	छिपा हुआ, ढँका हुआ
हृदयभेदक प्रक्रिया	–	हृदय को भीतर तक प्रभावित करनेवाली क्रिया
निजत्व	–	स्वयं का, अपनी विशेषता
ऐंड़ा-वेंड़ा	–	टेढ़ा-मेढ़ा
इंटीग्रल (अंग्रेज़ी शब्द)	–	अभिन्न
आत्मप्रकटीकरण	–	अपने मन की वास्तविकता प्रकट करना, मन की बात कहना
यशस्विता	–	प्रतिष्ठा, अत्यधिक यश, प्रसिद्धि
उल्कापिंड	–	ऐसे पत्थरनुमा टुकड़े जो अंतरिक्ष से पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हैं
अप्रत्याशित	–	अनसोचा, जिसकी आशा न हो, उम्मीद न हो
खरब	–	भारतीय गणना में सौ अरब की संख्या
वस्तुस्थिति	–	वास्तविक स्थिति
सप्रश्नता	–	प्रश्न के साथ, जिसके साथ प्रश्न जुड़ा हुआ हो
सर्वतोमुखी	–	सभी ओर से, सभी दिशाओं में

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

(सन् 1900-1967)

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म उत्तर प्रदेश के मिर्ज़ापुर ज़िले के चुनार नामक ग्राम में हुआ था। परिवार में अभावों के कारण उन्हें व्यवस्थित शिक्षा पाने का सुयोग नहीं मिला। मगर अपनी नैसर्गिक प्रतिभा और साधना से उन्होंने अपने समय के अग्रणी गद्य शिल्पी के रूप में अपनी पहचान बनाई। अपने तेवर और शैली के कारण उग्र जी अपने समय के चर्चित लेखक रहे। अपने कवि मित्र निराला की तरह उन्हें भी पुरातनपंथियों के कठोर विरोध का सामना करना पड़ा।

पत्रकारिता से उग्र जी का सक्रिय संबंध था। वे ***आज, विश्वमित्र, स्वदेश, वीणा, स्वराज्य*** *और* ***विक्रम*** *के संपादक रहे, लेकिन* ***मतवाला-मंडल*** *के प्रमुख सदस्य के रूप में उनकी विशेष पहचान है।*

उग्र जी ने शताधिक कहानियाँ लिखी हैं जो ***पंजाब की महारानी, रेशमी, पोली इमारत, चित्र-विचित्र, कंचन-सी काया, काल कोठरी, ऐसी होली खेलो लाल, कला का पुरस्कार*** *आदि में संकलित हैं।* ***चंद हसीनों के खतूत, बुधुआ की बेटी, दिल्ली का दलाल, मनुष्यानंद*** *आदि अनेक यथार्थवादी उपन्यासों की रचना भी उन्होंने की। कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र आदि के क्षेत्रों में भी उनकी लेखनी गतिशील रही। उनकी आत्मकथा* ***अपनी खबर*** *साहित्य जगत में बहुचर्चित है। उन्होंने* ***महात्मा ईसा*** *(नाटक) और* ***ध्रुवधारण*** *(खंडकाव्य) की भी रचना की है।*

उग्र जी की कहानियों की भाषा सरल, अलंकृत और व्यावहारिक है, जिसमें उर्दू के व्यावहारिक शब्द भी अनायास ही आ जाते हैं। भावों को मूर्तिमंत करने में इनकी भाषा अत्यधिक सजीव और सशक्त कही जा सकती है, जो पाठक

के मर्मस्थल पर सीधा प्रहार करती है। भावों के अनुरूप इनकी शैली भी व्यंग्यपरक है। इनकी कहानियों में **उसकी माँ**, **शाप**, **कला का पुरस्कार**, **जल्लाद** और **देशभक्त** आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

उग्र जी प्रेमचंदयुगीन कहानीकार हैं इसलिए उस समय की मुख्य प्रवृत्ति – समाज सुधार इनकी कहानियों में भी मौजूद है। **उसकी माँ** कहानी देश की दुरवस्था से चिंतित युवा पीढ़ी के विद्रोह को नए रूप में प्रस्तुत करती है। यह युवा पीढ़ी देश की दुरवस्था का ज़िम्मेदार शासन-तंत्र को मानती है तथा इस शासन-तंत्र को उखाड़ फेंकना चाहती है। दुष्ट, व्यक्ति-नाशक राष्ट्र के सर्वनाश में अपना योगदान ही इस पीढ़ी का सपना है। यथार्थ के तूफ़ानों से बेपरवाह यह पीढ़ी जानती है कि नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सँवारा गया है, वह बिगड़ेगा ही। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान की सहस्त्र भुजाओं की सखियाँ हैं।

नयी पीढ़ी का यह विद्रोही स्वर जहाँ राजसत्ता से विद्रोह की मशाल लिए खड़ा है, वहीं पूर्ववर्ती पीढ़ी का बुद्धिजीवी समाज अपनी सुविधा के लिए राजसत्ता के तलवे चाटने को तैयार है। इन दोनों के बीच खड़ी है एक माँ, जो अपना बेटा चाहती है, अपना लाल और उसकी खुशहाली। समाज के दो सिरों के बीच खड़ी ममतामयी माँ लाख कोशिशों के बावजूद व्यवस्था की चक्की से अपने बेटे को बचा नहीं पाती। पूरी कथा में व्याप्त तत्कालीन जनमानस, स्वाधीनता आंदोलन तथा माँ की ममता का सजीव चित्रण पाठक को उद्वेलित करता है।

उसकी माँ

दोपहर को ज़रा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में खड़ा-खड़ा बड़ी-बड़ी अलमारियों में सजे पुस्तकालय की ओर निहार रहा था। किसी महान लेखक की कोई कृति उनमें से निकालकर देखने की बात सोच रहा था। मगर, पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे तक मुझे महान ही महान नज़र आए। कहीं गेटे, कहीं रूसो, कहीं मेज़िनी, कहीं नीत्शे, कहीं शेक्सपीयर, कहीं टॉलस्टाय, कहीं ह्यूगो, कहीं मोपासाँ, कहीं डिकेंस, स्पेंसर, मैकाले, मिल्टन, मोलियर...उफ़! इधर से उधर तक एक-से-एक महान ही तो थे! आखिर मैं किसके साथ चंद मिनट मनबहलाव करूँ, यह निश्चय ही न हो सका, महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परेशान सा हो गया।

इतने में मोटर की पों-पों सुनाई पड़ी। खिड़की से झाँका तो सुरमई रंग की कोई 'फिएट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा – शायद कोई मित्र पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची!

जब नौकर ने सलाम कर आनेवाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया। उसपर शहर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट का नाम छपा था। ऐसे बेवक्त ये कैसे आए?

पुलिस-पति भीतर आए। मैंने हाथ मिलाकर, चक्कर खानेवाली एक गद्दीदार कुरसी पर उन्हें आसन दिया। वे व्यापारिक मुसकराहट से लैस होकर बोले, "इस अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करें।"

"आज्ञा हो!" मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होंने पॉकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तसवीर। बोले, "देखिए इसे, ज़रा बताइए तो, आप पहचानते हैं इसको?"

"हाँ, पहचानता तो हूँ," ज़रा सहमते हुए मैंने बताया।

"इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।"

"पूछिए।"

"इसका नाम क्या है?"

"लाल! मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर, यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नहीं।"

"कहाँ रहता है यह?" सुपरिंटेंडेंट ने मेरी ओर देखकर पूछा।

"मेरे बँगले के ठीक सामने एक दोमंज़िला, कच्चा-पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।"

"बूढ़ी का नाम क्या है?"

"जानकी।"

"और कोई नहीं है क्या इसके परिवार में? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है?"

"सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहांत हो गया। अब उस परिवार में वह और उसकी माता ही बचे हैं। उसका पिता जब तक जीवित रहा, बराबर मेरी ज़मींदारी का मुख्य मैनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वही मेरे पास कुछ हज़ार रुपए जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खर्चा चल रहा है। लड़का कॉलेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो साल बाद कमाने और परिवार को सँभालने लगेगा। मगर क्षमा कीजिए, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं?"

"यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ़ दी है।"

"अजी, इसमें तकलीफ़ की क्या बात है! हम तो सात पुश्त से सरकार के फ़रमाबरदार हैं। और कुछ आज्ञा..."

"एक बात और...", पुलिस–पति ने गंभीरतापूर्वक धीरे से कहा, "मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ, आप इस परिवार से ज़रा सावधान और दूर रहें। फिलहाल इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।"

"लाल की माँ!" एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने समझाया, "तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपन करता है? तुम उसे केवल प्यार ही करती हो न! हूँ! भोगोगी!"

"क्या है, बाबू?" उसने कहा।

"लाल क्या करता है?"

"मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नहीं देखती।"

"बिना किए ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं। हाँ, लाल की माँ! बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। ज़रूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।"

"माँ! माँ!" पुकारता हुआ उसी समय लाल भी आया – लंबा, सुडौल, सुंदर, तेजस्वी।

"माँ!!" उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा, "तू यहाँ भाग आई है। चल तो! मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं, उन्हें चटपट कुछ जलपान करा दे, फिर हम घूमने जाएँगे!"

"अरे!" जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, काँपने लगीं, उसे देखकर, "तू आ गया लाल! चलती हूँ, भैया! पर, देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे हैं? तू क्या पाजीपना करता है, बेटा?"

"क्या है, चाचा जी?" उसने सविनय, सुमधुर स्वर में मुझसे पूछा, "मैंने क्या अपराध किया है?"

"मैं तुमसे नाराज़ हूँ लाल!" मैंने गंभीर स्वर में कहा।

"क्यों, चाचा जी?"

"तुम बहुत बुरे होते जा रहे हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करनेवाले के साथी हो। हाँ, तुम हो! देखो लाल की माँ, इसके चेहरे का रंग उड़ गया, यह सोचकर कि यह खबर मुझे कैसे मिली।"

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रंग ज़रा मुरझा गया, मेरी बातों से! पर तुरंत ही वह सँभला।

"आपने गलत सुना, चाचा जी। मैं किसी षड्यंत्र में नहीं। हाँ, मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं ज़रूरत-बेज़रूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ। देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु-हृदय परतंत्रता पर।"

"तुम्हारी ही बात सही, तुम षड्यंत्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बक-बक क्यों? इससे फ़ायदा? तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है, पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।"

उसने नम्रता से कहा, "चाचा जी, क्षमा कीजिए। इस विषय में मैं आपसे विवाद नहीं करना चाहता।"

"चाहना होगा, विवाद करना होगा। मैं केवल चाचा जी नहीं, तुम्हारा बहुत कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचने लगते हैं, तुम्हारी बूढ़ी माँ घूमने लगती है। भला मैं तुम्हें बेहाथ होने दे सकता हूँ! इस भरोसे मत रहना।"

"इस पराधीनता के विवाद में, चाचा जी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राजभक्त, मैं कट्टर राजविद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं – कुछ कारणों से, मैं दूसरी को – दूसरे कारणों से। आप अपना पद छोड़ नहीं सकते – अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए, मैं अपना भी नहीं छोड़ सकता।"

"तुम्हारी कल्पनाएँ क्या हैं, सुनूँ तो! ज़रा मैं भी जान लूँ कि अबके लड़के कॉलेज की गरदन तक पहुँचते-पहुँचते कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते हैं। ज़रा मैं भी तो सुनूँ, बेटा।"

"मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाए!"

जानकी उठकर बाहर चली, "अरे! तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाज़े पर खड़े होंगे। लड़ तू, मैं जाती हूँ।" उसने मुझसे कहा, "समझा

दो बाबू, मैं तो आप ही कुछ नहीं समझती, फिर इसे क्या समझाऊँगी!" उसने फिर लाल की ओर देखा, "चाचा जो कहें, मान जा, बेटा। यह तेरे भले ही की कहेंगे।"

वह बेचारी कमर झुकाए, उस साठ बरस की वय में भी घूँघट सँभाले, चली गई। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गंभीरता नहीं समझी।

"मेरी कल्पना यह है कि...", उत्तेजित स्वर में लाल ने कहा, "ऐसे दुष्ट, व्यक्ति-नाशक राष्ट्र के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।"

"तुम्हारे हाथ दुर्बल हैं, उनसे जिनसे तुम पंजा लेने जा रहे हो, चर्र-मर्र हो उठेंगे, नष्ट हो जाएँगे।"

"चाचा जी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सँवारा गया है, वह बिगड़ेगा ही। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान की सहस्र भुजाओं की सखियाँ हैं।"

"तो तुम क्या करना चाहते हो?"

"जो भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा।"

"षड्यंत्र?"

"ज़रूरत पड़ी तो ज़रूर..."

"विद्रोह?"

"हाँ, अवश्य!"

"हत्या?"

"हाँ, हाँ, हाँ!"

"बेटा, तुम्हारा माथा न जाने कौन सी किताब पढ़ते-पढ़ते बिगड़ रहा है। सावधान!"

मेरी धर्मपत्नी और लाल की माँ एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थीं कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने के लिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

"क्यों लाल की माँ, लाल के साथ किसके लड़के आते हैं तुम्हारे घर में?"

"मैं क्या जानूँ, बाबू!" उसने सरलता से कहा, "मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह मुझे प्यारे दिखते हैं। सब लापरवाह! वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।"

मैंने एक ठंडी साँस ली, "हूँ, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते हैं, कुछ समझ पाती हो?"

"बाबू, वे लाल की बैठक में बैठते हैं। कभी-कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे बड़े प्रेम से मुझे 'माँ' कहते हैं। मेरी छाती फूल उठती है...मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।"

"हूँ...", मैंने फिर साँस ली।

"एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दिखता है। लाल कहता था, वह डंडा लड़ने में, दौड़ने में, घूँसेबाज़ी में, खाने में, छेड़खानी करने और हो-हो, हा-हा कर हँसने में समूचे कालेज में फ़र्स्ट है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परोस रही थी, मेरे मुँह की ओर देखकर कहा, 'माँ! तू तो ठीक भारत माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका उजला हिमालय है, तेरे केश। हाँ, नक्शे से साबित करता हूँ...तू भारत माता है। सिर तेरा हिमालय...माथे की दोनों गहरी बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना, यह नाक विंध्याचल, ठोढ़ी कन्याकुमारी तथा छोटी बड़ी झुरियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। ज़रा पास आ मेरे! तेरे केशों को पीछे से आगे बाएँ कंधे पर लहरा दूँ, वह बर्मा बन जाएगा। बिना उसके भारत माता का शृंगार शुद्ध न होगा'।"

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्‌गद हो उठी, "बाबू, ऐसा ढीठ लड़का! सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़, मेरे बालों को बाहर कर अपना बर्मा तैयार कर लिया!"

उसकी सरलता मेरी आँखों में आँसू बनकर छा गई। मैंने पूछा, "लाल की माँ, और भी वे कुछ बातें करते हैं? लड़ने की, झगड़ने की, गोला, गोली या बंदूक की?"

"अरे, बाबू," उसने मुसकराकर कहा, "वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातों का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान हैं, लापरवाह हैं। जो मुँह में आता है, बकते हैं। कभी-कभी तो पागलों-सी बातें करते हैं। महीनाभर पहले एक दिन लड़के बहुत

उत्तेजित थे। न जाने कहाँ, लड़कों को सरकार पकड़ रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे यों ही गप हाँकते थे। मगर उस दिन वे यही बक रहे थे, 'पुलिसवाले केवल संदेह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं। यह अत्याचारी पुलिस की नीचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है। धीरे-धीरे घुलाना-मिटाना है।'

एक ने उत्तेजित भाव से कहा, 'अजी, ये परदेसी कौन लगते हैं हमारे, जो बरबस राजभक्ति बनाए रखने के लिए हमारी छाती पर तोप का मुँह लगाए अड़े और खड़े हैं। उफ़! इस देश के लोगों के हिये की आँखें मुँद गई हैं। तभी तो इतने ज़ुल्मों पर भी आदमी आदमी से डरता है। ये लोग शरीर की रक्षा के लिए अपनी-अपनी आत्मा की चिता सँवारते फिरते हैं। नाश हो इस परतंत्रवाद का!'

दूसरे ने कहा, 'लोग ज्ञान न पा सकें, इसलिए इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भर रखा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें, इसलिए अपमानजनक और मनुष्यताहीन नीति-मर्दक कानून गढ़े हैं। गरीबों को चूसकर, सेना के नाम पर पले हुए पशुओं को शराब से, कबाब से, मोटा-ताज़ा रखती है यह सरकार। धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है यह शासन-प्रणाली!'

'ऐसे ही अंट-संट ये बातूनी बका करते हैं, बाबू। जभी चार छोकरे जुटे, तभी यही चर्चा। लाल के साथियों का मिज़ाज भी उसी-सा अल्हड़-बिल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों बक-बक में बढ़ते जा रहे हैं।"

"यह बुरा है, लाल की माँ!" मैंने गहरी साँस ली।

ज़मींदारी के कुछ ज़रूरी काम से चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था। लौटने पर बँगले में घुसने के पूर्व लाल के दरवाज़े पर नज़र पड़ी तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा-सा नज़र आया – जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर आने पर मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास मुख खड़ी हो गई।

"तुमने सुना?"

"नहीं तो, कौन सी बात?"

"लाल की माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है।"

मैं कुछ-कुछ समझ गया, फिर भी विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा, "क्या हुआ? ज़रा साफ़-साफ़ बताओ।"

"वही हुआ जिसका तुम्हें भय था। कल पुलिस की एक पलटन ने लाल का घर घेर लिया था। बारह घंटे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पंद्रह साथी, सभी पकड़ लिए गए हैं। सबके घरों से भयानक-भयानक चीज़ें निकली हैं।"

"लाल के यहाँ?"

"उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत से कारतूस और पत्र पाए गए हैं। सुना है, उन पर हत्या, षड्यंत्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा आदि अपराध लगाए गए हैं।"

"हूँ," मैंने ठंडी साँस ली, "मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि वह लौंडा धोखा देगा। अब यह बूढ़ी बेचारी मरी। वह कहाँ है? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी?"

"जानकी मेरे पास कहाँ आई! बुलवाने पर भी कल नकार गई। नौकर से कहलाया, 'परांठे बना रही हूँ, हलवा, तरकारी अभी बनाना है, नहीं तो, वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरझा न जाएँगे। जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेगी। मगर मेरे जीते-जी यह नहीं होने का'।"

"वह पागल है, भोगेगी," मैं दुख से टूटकर चारपाई पर गिर पड़ा। मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद प्रायः एक वर्ष तक वह मुकदमा चला। कोई भी अदालत के कागज़ उलटकर देख सकता है, सी.आई.डी. ने और उनके प्रमुख सरकारी वकील ने उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोपण किए। उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ कायम की थीं, खर्चे और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छापा मारकर शस्त्र एकत्र किए थे। उन्होंने न जाने किस पुलिस के दारोगा को मारा था और न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेंडेंट को। ये सभी बातें सरकार की ओर से प्रमाणित की गईं।

उधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था? प्रायः कोई नहीं। सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी, तो 'नहीं' का भाई। हाँ, उनकी पैरवी में सबसे अधिक परेशान वह बूढ़ी रहा करती। वह लोटा, थाली, ज़ेवर आदि बेच-बेचकर सुबह-शाम उन बच्चों को भोजन पहुँचाती। फिर वकीलों के यहाँ जाकर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती, कहती, "सब झूठ है। न जाने कहाँ से पुलिसवालों ने ऐसी-ऐसी चीज़ें हमारे घरों से पैदा कर दी हैं। वे लड़के केवल बातूनी हैं। हाँ, मैं भगवान का चरण छूकर कह सकती हूँ, तुम जेल में जाकर देख आओ, वकील बाबू। भला, फूल-से बच्चे हत्या कर सकते हैं?"

उसका तन सूखकर काँटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गई, आँखें निस्तेज, मगर उन बच्चों के लिए दौड़ना, हाय-हाय करना उसने बंद न किया। कभी-कभी सरकारी नौकर, पुलिस या वार्डन झुँझलाकर उसे झिड़क देते, धकिया देते।

उसको अंत तक यह विश्वास रहा कि यह सब पुलिस की चालबाज़ी है। अदालत में जब दूध का दूध और पानी का पानी किया जाएगा, तब वे बच्चे ज़रूर बेदाग छूट जाएँगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आएँगे। उसे 'माँ' कहकर पुकारेंगे।

मगर उस दिन उसकी कमर टूट गई, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी लाल को, उस बंगड़ लठैत को तथा दो और लड़कों को फाँसी और दस को दस वर्ष से सात वर्ष तक की कड़ी सज़ाएँ सुना दीं।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते बाहर आए। सबसे पहले उस बंगड़ की नज़र उसपर पड़ी।

"माँ!" वह मुसकराया, "अरे, हमें तो हलवा खिला-खिलाकर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है, ऐसा कि फाँसी की रस्सी टूट जाए और हम अमर के अमर बने रहें, मगर तू स्वयं सूखकर काँटा हो गई है। क्यों पगली, तेरे लिए घर में खाना नहीं है क्या?"

"माँ!" उसके लाल ने कहा, "तू भी जल्द वहीं आना जहाँ हम लोग जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी ही देर का रास्ता है, माँ! एक साँस में पहुँचेगी। वहीं हम स्वतंत्रता से मिलेंगे। तेरी गोद में खेलेंगे। तुझे कंधे पर उठाकर इधर से उधर दौड़ते फिरेंगे। समझती है? वहाँ बड़ा आनंद है।"

"आएगी न, माँ?" बंगड़ ने पूछा।

"आएगी न, माँ?" लाल ने पूछा।

"आएगी न, माँ?" फाँसी-दंड प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा।

और वह टुकुर-टुकुर उनका मुँह ताकती रही – "तुम कहाँ जाओगे पगलो?"

जब से लाल और उसके साथी पकड़े गए, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने से डरता था। उसे रास्ते में देखकर जाने-पहचाने बगलें झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस बेचारी बूढ़ी पर, मगर मैं भी बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गदरन मुसीबत में डालता, विद्रोही की माँ से संबंध रखकर?

उस दिन ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय वाले कमरे में गया, किसी महान लेखक की कोई महान कृति क्षणभर देखने के लालच से। मैंने मेज़िनी की एक जिल्द निकालकर उसे खोला। पहले ही पन्ने पर पेंसिल की लिखावट देखकर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, वे लाल के हस्ताक्षर थे। मुझे याद पड़ गई। तीन वर्ष पूर्व उस पुस्तक को मुझसे माँगकर उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन में बड़ा मोह उत्पन्न हुआ उस लड़के के लिए। उसके पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तसवीर मेरी आँखों के आगे नाच गई। लाल की माँ पर उसके सिद्धांतों, विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था, उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर को देखते ही लगी। मेरे मुँह से एक गंभीर, लाचार, दुर्बल साँस निकलकर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलिस सुपरिंटेंडेंट का ध्यान आया। उसकी भूरी, डरावनी, अमानवी आँखें मेरी 'आप सुखी तो जग सुखी' आँखों में वैसे ही चमक गईं, जैसे

ऊजड़ गाँव के सिवान में कभी-कभी भुतही चिनगारी चमक जाया करती है। उसके रूखे फ़ौलादी हाथ, जिनमें लाल की तसवीर थी, मानो मेरी गरदन चापने लगे। मैं मेज़ पर से रबर (इरेज़र) उठाकर उस पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

उसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आई। उसके हाथ में एक पत्र था।

"अरे!" मैं अपने को रोक न सका, "लाल की माँ! तुम तो बिलकुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानो कुछ देखती ही नहीं हो। यह हाथ में क्या है?"

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा, उसपर जेल की मुहर थी। सज़ा सुनाने के बाद वह वहीं भेज दिया गया था, यह मुझे मालूम था।

मैं पत्र निकालकर पढ़ने लगा। वह उसकी अंतिम चिट्ठी थी। मैंने कलेजा रूखाकर उसे ज़ोर से पढ़ दिया –

"माँ!

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके सवेरे मैं बाल अरुण के किरण-रथ पर चढ़कर उस ओर चला जाऊँगा। मैं चाहता तो अंत समय तुमसे मिल सकता था, मगर इससे क्या फ़ायदा! मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मांतर की जननी ही रहोगी। मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ! माँ! जब तक पवन साँस लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खींच सकता है?

दिवाकर थमा रहेगा, अरुण रथ लिए जमा रहेगा! मैं, बंगड़ वह, यह सभी तेरे इंतज़ार में रहेंगे।

हम मिले थे, मिले हैं, मिलेंगे। हाँ, माँ!

तेरा...

लाल"

काँपते हाथ से पढ़ने के बाद पत्र को मैंने उस भयानक लिफ़ाफ़े में भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़कर कमरे को करुणा से कँपाने लगी। मगर, वह जानकी ज्यों-की-त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखों से मेरी ओर देखती रही, मानो वह उस कमरे में थी ही नहीं।

क्षणभर बाद हाथ बढ़ाकर मौन भाषा में उसने पत्र माँगा। और फिर, बिना कुछ कहे कमरे के फाटक के बाहर हो गई, डुगुर-डुगुर लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मैं धम से कुरसी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिए नहीं, इस सरकार की क्रूरता के लिए भी नहीं, उस बेचारी भोली, बूढ़ी जानकी – लाल की माँ के लिए। आह! वह कैसी स्तब्ध थी। उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती तो आँधी आ जाती। समुद्र पाता तो बौखला उठता।

जब एक का घंटा बजा, मैं ज़रा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो हरारत पैदा हो गई है...माथे में, छाती में, रग-रग में। पत्नी ने आकर कहा, "बैठे ही रहोगे! सोओगे नहीं?" मैंने इशारे से उन्हें जाने का कहा।

फिर मेज़िनी की जिल्द पर नज़र गई। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर अपने सुखों की, ज़मींदारी की, धनिक जीवन की और उस पुलिस-अधिकारी की निर्दय, नीरस, निस्सार आँखों की स्मृति कलेजे में कंपन भर गई। फिर रबर उठाकर मैंने उस पाजी का पेंसिल-खचित नाम पुस्तक की छाती पर से मिटा डालना चाहा।

"माँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ा..."

मुझे सुनाई पड़ा। ऐसा लगा, गोया लाल की माँ कराह रही है। मैं रबर हाथ में लिए, दहलते दिल से, खिड़की की ओर बढ़ा। लाल के घर की ओर कान लगाने पर सुनाई न पड़ा। मैं सोचने लगा, भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज़ और अवश्य सुनाई पड़ती। वह कराहनेवाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियाई जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर तड़पा करती हैं।

मैं पुनः सोचने लगा। वह उस नालायक के लिए क्या नहीं करती थी! खिलौने की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलराती और सँवारती फिरती थी। पर आह रे छोकरे!

"माँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ा..."

फिर वही आवाज़। ज़रूर जानकी रो रही है। ज़रूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ! अभागिनी वैसे ही पुकार रही है जैसे वह पाजी गाकर, मचलकर, स्वर को खींचकर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला। उषा पीली हुई, लाल हुई। रवि रथ लेकर वहाँ क्षितिज से उस छोर पर आकर पवित्र मन से खड़ा हो गया। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई।

"माँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ..."

मानो लाल पुकार रहा था, मानो जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकारकर कहा, "देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है?"

जब वह लौटकर आया, तब मैं एक बार पुनः मेज़ और मेज़िनी के सामने खड़ा था। हाथ में रबर लिए उसी उद्देश्य से। उसने घबराए स्वर से कहा, "हुज़ूर, उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वे दरवाज़े पर पाँव पसारे, हाथ में कोई चिट्ठी लिए, मुँह खोल, मरी बैठी हैं। हाँ सरकार, विश्वास मानिए, वे मर गई हैं। साँस बंद है, आँखें खुलीं..."

प्रश्न-अभ्यास

1. क्या लाल का व्यवहार सरकार के विरुद्ध षड्यंत्रकारी था?
2. पूरी कहानी में जानकी न तो शासन-तंत्र के समर्थन में है न विरोध में, किंतु लेखक ने उसे केंद्र में ही नहीं रखा बल्कि कहानी का शीर्षक बना दिया। क्यों?
3. चाचा जानकी तथा लाल के प्रति सहानुभूति तो रखता है किंतु वह डरता है। यह डर किस प्रकार का है और क्यों है?
4. इस कहानी में दो तरह की मानसिकताओं का संघर्ष है, एक का प्रतिनिधित्व लाल करता है और दूसरे का उसका चाचा। आपकी नज़र में कौन सही है? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
5. उन लड़कों ने कैसे सिद्ध किया कि जानकी सिर्फ़ माँ नहीं भारतमाता है? कहानी के आधार पर उसका चरित्र-चित्रण कीजिए।
6. विद्रोही की माँ से संबंध रखकर कौन अपनी गरदन मुसीबत में डालता? इस कथन के आधार पर उस शासन-तंत्र और समाज-व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

7. चाचा ने लाल का पेंसिल-खचित नाम पुस्तक की छाती पर से क्यों मिटा डालना चाहा?
8. भारत माता की छवि या धारणा आपके मन में किस प्रकार की है?
9. जानकी जैसी भारत माता हमारे बीच बनी रहे, इसके लिए 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के संदर्भ में विचार कीजिए।
10. निम्नलिखित का आशय स्पष्ट कीजिए –

    (क) पुलिसवाले केवल............धीरे-धीरे घुलाना-मिटाना है।

    (ख) चाचा जी, नष्ट हो जाना............सहस्र भुजाओं की सखियाँ हैं।

योग्यता-विस्तार

1. पुलिस के साथ दोस्ती की जानी चाहिए या नहीं? अपनी राय लिखिए।
2. लाल और उसके साथियों से आपको क्या प्रेरणा मिलती है?
3. 'उसकी माँ' के आधार पर अपनी माँ के बारे में एक कहानी लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पुश्त – पीढ़ी
फ़रमाबरदार – आज्ञाकारी, सेवक
पाजीपन – बदमाशी
दुरवस्था – बुरी हालत
हँसोड़ – हँसमुख प्रवृत्ति का
नीति-मर्दक कानून – नीति को मिटाने वाला, नष्ट करने वाला कानून
बंगड़ – शरारती
ब्यालू – रात का भोजन
बाल अरुण – सुबह-सुबह का सूर्य, (लालिमायुक्त)

भारतेंदु हरिश्चंद्र

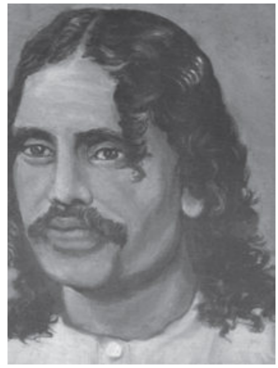

(सन् 1850–1885)

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म काशी में हुआ था। उनका व्यक्तित्व देश-प्रेम और क्रांति-चेतना से समृद्ध था। किशोर वय में ही उन्होंने स्वदेश की दुर्दशा का त्रासद अनुभव कर लिया था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र पुनर्जागरण की चेतना के अप्रतिम नायक थे। बंगाल के प्रख्यात मनीषी और पुनर्जागरण के विशिष्ट नायक ईश्वरचंद्र विद्यासागर से उनका अंतरंग संबंध था। बंधन-मुक्ति की चेतना और आधुनिकता की रोशनी से हिंदी क्षेत्र को आलोकित करने के लिए उनका मानस व्याकुल रहता था। अपनी अभीप्सा को मूर्त करने के लिए उन्होंने समानधर्मा रचनाकारों को प्रेरित-प्रोत्साहित किया, ***तदीय समाज*** *की स्थापना की, पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं, विविध विधाओं में साहित्य-रचना की। उन्होंने* ***कविवचनसुधा*** *नामक पत्रिका निकाली तथा* ***हरिश्चंद्र मैगज़ीन*** *का संपादन किया। बाद में यही* ***हरिश्चंद्र चंद्रिका*** *नाम से प्रकाशित होने लगी।*

स्त्री-शिक्षा के लिए उन्होंने ***बाला बोधिनी*** *पत्रिका का प्रकाशन किया। उन्होंने बांग्ला के नाटकों का अनुवाद भी किया, जिनमें* ***धनंजय विजय, विद्या सुंदर, पाखंड विडंबन, सत्य हरिश्चंद्र*** *तथा* ***मुद्राराक्षस*** *आदि प्रमुख हैं। उनके मौलिक नाटक हैं –* ***वैदिकि हिंसा हिंसा न भवति, श्री चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी, नील देवी*** *आदि।*

भारतेंदु हरिश्चंद्र की धारणा के मुताबिक सन् 1873 में 'हिंदी नई चाल में ढली'। यह 'चाल' शिल्प और संवेदना की दृष्टि से सर्वथा नवीन थी। खड़ी बोली गद्य में हिंदी की यात्रा जातीय संवेदना से अनुप्राणित होकर शुरू हुई थी, जिसे भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके समकालीन रचनाकारों ने अपनी साधना से अपेक्षित गति दी।

हिंदी नाटक और निबंध की परंपरा भारतेंदु से शुरू होती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रभाव उनके समकालीनों पर स्पष्ट

देखा जा सकता है। आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में उनका उल्लेखनीय योगदान है। उन्होंने अपने समकालीन लेखकों का तो नेतृत्व किया ही, साथ ही परवर्ती लेखकों के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य भी किया। यहाँ पाठ्यपुस्तक के लिए उनका बलिया के ददरी मेले में दिया गया व्याख्यान चुना गया है।

भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है? *भारतेंदु का प्रसिद्ध भाषण है। इसमें एक ओर ब्रिटिश शासन की मनमानी पर व्यंग्य है, तो दूसरी ओर अंग्रेज़ों के परिश्रमी स्वभाव के प्रति आदर भी है। भारतेंदु ने आलसीपन, समय के अपव्यय आदि कमियों को दूर करने की बात करते हुए भारतीय समाज की रूढ़ियों और गलत जीवन शैली पर भी प्रहार किया है। जनसंख्या-नियंत्रण, श्रम की महत्ता, आत्मबल और त्याग-भावना को भारतेंदु ने उन्नति के लिए अनिवार्य माना है और अत्यंत प्रेरक ढंग से इसे व्यक्त किया है।*

भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?

आज बड़े ही आनंद का दिन है कि इस छोटे-से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखते हैं। इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाए वही बहुत कुछ है। बनारस ऐसे-ऐसे बड़े नगरों में जब कुछ नहीं होता तो यह हम क्यों न कहेंगे कि बलिया में जो कुछ हमने देखा, वह बहुत ही प्रशंसा के योग्य है। इस उत्साह का मूल कारण जो हमने खोजा, तो प्रगट हो गया कि इस देश के भाग्य से आजकल यहाँ सारा समाज ही ऐसा एकत्र है। जहाँ रॉबर्ट साहब बहादुर जैसे कलेक्टर हों, वहाँ क्यों न ऐसा समाज हो। जिस देश और काल में ईश्वर ने अकबर को उत्पन्न किया था, उसी में अबुल फज़ल, बीरबल, टोडरमल को भी उत्पन्न किया। यहाँ रॉबर्ट साहब अकबर हैं, तो मुंशी चतुर्भुज सहाय, मुंशी बिहारीलाल साहब आदि अबुल फज़ल और टोडरमल हैं। हमारे हिंदुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं। यद्यपि फर्स्ट क्लास, सेकेंड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी-अच्छी और बड़े-बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी हैं पर बिना इंजिन ये सब नहीं चल सकतीं, वैसे ही हिंदुस्तानी लोगों को कोई चलानेवाला हो, तो ये क्या नहीं कर सकते। इनसे इतना कह दीजिए, ''का चुप साधि रहा बलवाना'' फिर देखिए कि हनुमान जी को अपना बल कैसे याद आ जाता है। सो बल कौन याद दिलावे या हिंदुस्तानी राजे-महाराजे या नवाब रईस या हाकिम। राजे-महाराजों को अपनी पूजा, भोजन, झूठी गप से छुट्टी नहीं। हाकिमों को

कुछ तो सरकारी काम घेरे रहता है, कुछ बॉल, घुड़दौड़, थिएटर, अखबार में समय गया। कुछ समय बचा भी तो उनको क्या गरज है कि हम गरीब गंदे काले आदमियों से मिलकर अपना अनमोल समय खोवैं। बस वही मसल हुई – "तुम्हें गैरों से कब फ़ुरसत हम अपने गम से कब खाली। चलो, बस हो चुका मिलना न हम खाली न तुम खाली।" तीन मेंढक एक के ऊपर एक बैठे थे। ऊपरवाले ने कहा 'ज़ौक शौक', बीचवाला बोला, 'गुम सुम', सबके नीचेवाला पुकारा 'गए हम'। सो हिंदुस्तान की साधारण प्रजा की दशा यही है –गए हम।

पहले भी जब आर्य लोग हिंदुस्तान में आकर बसे थे, राजा और ब्राह्मणों ही के ज़िम्मे यह काम था कि देश में नाना प्रकार की विद्या और नीति फैलावैं और अब भी ये लोग चाहैं तो हिंदुस्तान प्रतिदिन कौन कहै, प्रतिछिन बढ़ै। पर इन्हीं लोगों को सारे संसार के निकम्मेपन ने घेर रक्खा है। "बौद्धारो मत्सरग्रस्ता अभवः स्मरदूषिताः।" हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जब इनके पुरुषों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठकर बाँस की नलियों से जो तारा ग्रह आदि वेध करके उनकी गति लिखी है, वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीनें बनी हैं उनसे उन ग्रहों को वेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंग्रेज़ी विद्या की ओर जगत की उन्नति की कृपा से लाखों पुस्तकें और हज़ारों यंत्र तैयार हैं। तब हम लोग निरी चुंगी की कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन, अंग्रेज़ फ़रांसीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्ट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमीं पहले छू लें। उस समय हिंदू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको, औरों को जाने दीजिए, जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देखकर भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जाएगा, फिर कोटि उपाय किए भी आगे न बढ़ सकैगा। इस लूट में, इस बरसात में भी जिसके सिर पर कमबख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्टी बँधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

मुझको मेरे मित्रों ने कहा था कि तुम इस विषय पर आज कुछ कहो कि हिंदुस्तान की कैसे उन्नति हो सकती है। भला इस विषय पर मैं और क्या कहूँ 'भागवत' में एक श्लोक है – "नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारं। मयाऽनुकूलेन नभः स्वतेरितुं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।" भगवान कहते हैं कि पहले तो मनुष्य जनम ही बड़ा दुर्लभ है, सो मिला और उस पर गुरु की कृपा और मेरी अनुकूलता। इतना सामान पाकर भी जो मनुष्य इस संसार-सागर के पार न जाए, उसको आत्महत्यारा कहना चाहिए। वही दशा इस समय हिंदुस्तान की है। अंग्रेज़ों के राज्य में सब प्रकार का सामान पाकर, अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करैं तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है। सास के अनुमोदन से एकांत रात में सूने रंगमहल में जाकर भी बहुत दिन से जिस प्रान से प्यारे परदेसी पति से मिलकर छाती ठंडी करने की इच्छा थी, उसका लाज से मुँह भी न देखै और बोलै भी न, तो उसका अभाग्य ही है। वह तो कल फिर परदेस चला जाएगा। वैसे ही अंग्रेज़ों के राज्य में भी जो हम कूँए के मेंढक, काठ के उल्लू, पिंजड़े के गंगाराम ही रहैं तो हमारी कमबख्त कमबख्ती फिर कमबख्ती है।

बहुत लोग यह कहैंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं? तुम्हारा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंग्लैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से अपना पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के काँटों को साफ़ किया। क्या इंग्लैंड में किसान, खेतवाले, गाड़ीवान, मज़दूर, कोचवान आदि नहीं हैं? किसी देश में भी सभी पेट भरे हुए नहीं होते। किंतु वे लोग जहाँ खेत जोतते-बोते हैं वहीं उसके साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी और कौन नई कल या मसाला बनावैं, जिसमें इस खेती में आगे से दूना अन्न उपजै। विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं। जब मालिक उतरकर किसी दोस्त के यहाँ गया उसी समय कोचवान ने गद्दी के नीचे से अखबार निकाला। यहाँ उतनी देर कोचवान हुक्का पिएगा या गप्प करेगा। सो गप्प भी निकम्मी। वहाँ के लोग गप्प ही में देश के प्रबंध छाँटते हैं। सिद्धांत यह कि वहाँ के लोगों का यह सिद्धांत है कि एक छिन भी व्यर्थ न जाए।

उसके बदले यहाँ के लोगों में जितना निकम्मापन हो उतना ही वह बड़ा अमीर समझा जाता है। आलस यहाँ इतनी बढ़ गई कि मलूकदास ने दोहा ही बना डाला – "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम।" चारों ओर आँख उठाकर देखिए तो बिना काम करनेवालों की ही चारों ओर बढ़ती है। रोज़गार कहीं कुछ भी नहीं है, अमीरों की मुसाहबी, दल्लाली या अमीरों के नौजवान लड़कों को खराब करना या किसी की जमा मार लेना, इनके सिवा बतलाइए और कौन रोज़गार है। जिससे कुछ रुपया मिलै। चारों ओर दरिद्रता की आग लगी हुई है। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि दरिद्र कुटुंबी इस तरह अपनी इज़्ज़त को बचाता फिरता है, जैसे लाजवंती कुल की बहू फटे कपड़ों में अपने अंग को छिपाए जाती है। वही दशा हिंदुस्तान की है।

मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन-दिन यहाँ बढ़ते जाते हैं और रुपया दिन-दिन कमती होता जाता है। तो अब बिना ऐसा उपाय किए काम नहीं चलैगा कि रुपया भी बढ़ै और वह रुपया बिना बुद्धि बढ़े न बढ़ैगा। भाइयो, राजा-महाराजों का मुँह मत देखो, मत यह आशा रक्खो कि पंडित जी कथा में कोई ऐसा उपाय भी बतलावैंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ो। कब तक अपने को जंगली हूस मूर्ख बोदे डरपोकने पुकरवाओगे। दौड़ो, इस घोड़दौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है। "फिर कब राम जनकपुर ऐहैं।" अबकी जो पीछे पड़े तो फिर रसातल ही पहुँचोगे। जब पृथ्वीराज को कैद करके गोरे ले गए तो शहाबुद्दीन के भाई गियासुद्दीन से किसी ने कहा कि वह शब्दभेदी बाण बहुत अच्छा मारता है। एक दिन सभा नियत हुई और सात लोहे के तावे बाण से फोड़ने को रखे गए। पृथ्वीराज को लोगों ने पहले ही से अंधा कर दिया था। संकेत यह हुआ कि जब गियासुद्दीन 'हूँ' करे तब वह तावों पर बाण मारे। चंद कवि भी उसके साथ कैदी था। यह सामान देखकर उसने यह दोहा पढ़ा। "अबकी चढ़ी कमान, को जानै फिर कब चढ़ै। जिनि चुक्के चौहान, इक्के मारय इक्क सर।।" उसका संकेत समझकर जब गियासुद्दीन ने 'हूँ' किया तो पृथ्वीराज ने उसी को बाण मार दिया। वही बात अब है। अबकी चढ़ी, इस समय

में सरकार का राज्य पाकर और उन्नति का इतना सामान पाकर भी तुम लोग अपने को न सुधारो तो तुम्हीं रहो और वह सुधारना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो। धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोज़गार में, शिष्टाचार में, चाल-चलन में, शरीर के बल में, मन के बल में, समाज में, बालक में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति सब देश में उन्नति करो। सब ऐसी बातों को छोड़ो जो तुम्हारे इस पथ के कंटक हों, चाहे तुम्हैं लोग निकम्मा कहैं या नंगा कहैं, कृस्तान कहैं या भ्रष्ट कहैं। तुम केवल अपने देश की दीनदशा को देखो और उनकी बात मत सुनो।

अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः।
स्वकार्य्यं साधयेत् धीमान् कार्य्यध्वंसो हि मूर्खता।।

जो लोग अपने को देश हितैषी लगाते हों, वह अपने सुख को होम करके, अपने धन और मान का बलिदान करके कमर कस के उठो। देखादेखी थोड़े दिन में सब हो जाएगा। अपनी खराबियों के मूल कारणों को खोजो। कोई धर्म की आड़ में, कोई देश की चाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में छिपे हैं। उन चोरों को वहाँ-वहाँ से पकड़-पकड़कर लाओ। उनको बाँध-बाँधकर कैद करो। हम इससे बढ़कर क्या कहें कि जैसे तुम्हारे घर में कोई पुरुष व्यभिचार करने आवै तो जिस क्रोध से उसको पकड़कर मारोगे और जहाँ तक तुम्हारे में शक्ति होगी उसका सत्यानाश करोगे। उसी तरह इस समय जो-जो बातैं तुम्हारे उन्नति-पथ में काँटा हों, उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। कुछ मत डरो। जब तक सौ-दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकाले जाएँगे, दरिद्र न हो जाएँगे, कैद न होंगे, वरंच जान से न मारे जाएँगे तब तक कोई देश भी न सुधरैगा।

अब यह प्रश्न होगा कि भाई, हम तो जानते ही नहीं कि उन्नति और सुधरना किस चिड़िया का नाम है। किसको अच्छा समझैं? क्या लें, क्या छोड़ैं? तो कुछ बातैं जो इस शीघ्रता में मेरे ध्यान में आती हैं, उनको मैं कहता हूँ, सुनो –

सब उन्नतियों का मूल धर्म है। इससे सबके पहले धर्म की ही उन्नति करनी उचित है। देखो, अँग्रेज़ों की धर्मनीति और राजनीति परस्पर मिली है, इससे उनकी

दिन-दिन कैसी उन्नति है। उनको जाने दो, अपने ही यहाँ देखो! तुम्हारे यहाँ धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, समाज-गठन, वैद्यक आदि भरे हुए हैं। दो-एक मिसाल सुनो। यही तुम्हारा बलिया का मेला और यहाँ स्नान क्यों बनाया गया है? जिसमें जो लोग कभी आपस में नहीं मिलते, दस-दस, पाँच-पाँच कोस से वे लोग साल में एक जगह एकत्र होकर आपस में मिलें। एक-दूसरे का दुःख-सुख जानैं। गृहस्थी के काम की वह चीज़ैं जो गाँव में नहीं मिलती, यहाँ से ले जाएँ। एकादशी का व्रत क्यों रखा है? जिसमें महीने में दो-एक उपवास से शरीर शुद्ध हो जाए। गंगा जी नहाने जाते हो तो पहिले पानी सिर पर चढ़ाकर तब पैर डालने का विधान क्यों है? जिसमें तलुए से गरमी सिर में चढ़कर विकार न उत्पन्न करे। दीवाली इसी हेतु है कि इसी बहाने साल-भर में एक बेर तो सफाई हो जाए। होली इसी हेतु है कि बसंत की बिगड़ी हवा स्थान-स्थान पर अग्नि बलने से स्वच्छ हो जाए। यही तिहवार ही तुम्हारी मानो म्युनिसिपालिटी हैं। ऐसे ही सब पर्व, सब तीर्थ व्रत आदि में कोई हिकमत है। उन लोगों ने धर्मनीति और समाजनीति को दूध-पानी की भाँति मिला दिया है। खराबी जो बीच में भई है वह यह है कि उन लोगों ने ये धर्म क्यों मानने लिखे थे, इसका लोगों ने मतलब नहीं समझा और इन बातों को वास्तविक धर्म मान लिया। भाइयो, वास्तविक धर्म तो केवल परमेश्वर के चरण कमल का भजन है। ये सब तो समाज धर्म हैं जो देशकाल के अनुसार शोधे और बदले जा सकते हैं। दूसरी खराबी यह हुई कि उन्हीं महात्मा बुद्धिमान ऋषियों के वंश के लोगों ने अपने बाप-दादों का मतलब न समझकर बहुत से नए-नए धर्म बनाकर शास्त्रों में धर दिए। बस सभी तिथि-व्रत और सभी स्थान तीर्थ हो गए। सो इन बातों को अब एक बेर आँख खोलकर देख और समझ लीजिए कि फलानी बात उन बुद्धिमान ऋषियों ने क्यों बनाई और उनमें देश और काल के जो अनुकूल और उपकारी हों, उनको ग्रहण कीजिए। बहुत सी बातैं जो समाज-विरुद्ध मानी हैं, किंतु धर्मशास्त्रों में जिनका विधान है, उनको चलाइए। जैसे जहाज़ का सफ़र, विधवा-विवाह आदि। लड़कों को छोटेपन ही में ब्याह करके उनका बल, वीर्य, आयुष्य सब मत घटाइए। आप उनके माँ-बाप हैं या उनके शत्रु हैं? वीर्य उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिए, विद्या कुछ पढ़ लेने दीजिए; नोन, तेल, लकड़ी की फ़िक्र करने की बुद्धि

सीख लेने दीजिए – तब उनका पैर काठ में डालिए। कुलीन-प्रथा, बहु-विवाह आदि को दूर कीजिए। लड़कियों को भी पढ़ाइए, किंतु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती हैं जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुलधर्म सीखें, पति की भक्ति करैं और लड़कों को सहज में शिक्षा दें। वैष्णव, शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का वैर छोड़ दें। यह समय इन झगड़ों का नहीं। हिंदू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए। जाति में कोई चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो, सबका आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उसको वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों को तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।

मुसलमान भाइयों को भी उचित है कि इस हिंदुस्तान में बसकर वे लोग हिंदुओं को नीचा समझना छोड़ दें। ठीक भाइयों की भाँति हिंदुओं से बरताव करैं। ऐसी बात, जो हिंदुओं का जी दुखानेवाली हों, न करें। घर में आग लगै, तब जिठानी – द्यौरानी को आपस का डाह छोड़कर एक साथ वह आग बुझानी चाहिए। जो बात हिंदुओं को नहीं मयस्सर हैं, वह धर्म के प्रभाव से मुसलमानों को सहज प्राप्त हैं। उनमें जाति नहीं, खाने-पीने में चौका-चूल्हा नहीं, विलायत जाने में रोक-टोक नहीं। फिर भी बड़े ही सोच की बात है, मुसलमानों ने अभी तक अपनी दशा कुछ नहीं सुधारी। अभी तक बहुतों को यही ज्ञान है कि दिल्ली, लखनऊ की बादशाहत कायम है। यारो! वे दिन गए। अब आलस, हठधर्मी यह सब छोड़ो। चलो, हिंदुओं के साथ तुम भी दौड़ो, एक-एक दो होंगे। पुरानी बातैं दूर करो। मीरहसन की 'मसनवी' और 'इंदरसभा' पढ़ाकर छोटेपन ही से लड़कों को सत्यानाश मत करो। होश सम्हाला नहीं कि पट्टी पार ली, चुस्त कपड़ा पहना और गज़ल गुनगुनाए। "शौक तिफ़्ली से मुझे गुल की जो दीदार का था। न किया हमने गुलिस्ताँ का सबक याद कभी"। भला सोचो कि इस हालत में बड़े होने पर वे लड़के क्यों न बिगड़ैंगे। अपने लड़कों को ऐसी किताबैं छूने भी मत दो। अच्छी-से-अच्छी उनको तालीम दो। पिनशिन और वज़ीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो। लड़कों को रोज़गार सिखलाओ। विलायत भेजो।

छोटेपन से मिहनत करने की आदत दिलाओ। सौ–सौ महलों के लाड़–प्यार दुनिया से बेखबर रहने की राह मत दिखलाओ।

भाई हिंदुओ! तुम भी मत–मतांतर का आग्रह छोड़ो। आपस में प्रेम बढ़ाओ। इस महामंत्र का जाप करो। जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्रह्मो, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो। कारीगरी जिसमें तुम्हारे यहाँ बढ़ै, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहै वह करो। देखो, जैसे हज़ार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली हैं, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हज़ार तरह से इंग्लैंड, फरांसीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती हैं। दीआसलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है। ज़रा अपने ही को देखो। तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बिनी है। जिस लंकिलाट का तुम्हारा अंगा है वह इंग्लैंड का है। फरांसीस की बनी कंघी से तुम सिर झारते हो और जर्मनी की बनी चरबी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है। यह तो वही मसल हुई कि एक बेफ़िकरे मँगनी का कपड़ा पहिनकर किसी महफिल में गए। कपड़े को पहिचानकर एक ने कहा, 'अजी यह अंगा तो फलाने का है।' दूसरा बोला, 'अजी टोपी भी फलाने की है।' तो उन्होंने हँसकर जवाब दिया कि 'घर की तो मूछैं ही मूछैं हैं।' हाय अफ़सोस, तुम ऐसे हो गए कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते। भाइयो, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।

प्रश्न–अभ्यास

1. पाठ के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि 'इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाए वही बहुत कुछ है' क्यों कहा गया है?
2. 'जहाँ रॉबर्ट साहब बहादुर जैसे कलेक्टर हों, वहाँ क्यों न ऐसा समाज हो' वाक्य में लेखक ने किस प्रकार के समाज की कल्पना की है?

3. जिस प्रकार ट्रेन बिना इंजिन के नहीं चल सकती ठीक उसी प्रकार 'हिंदुस्तानी लोगों को कोई चलानेवाला हो' से लेखक ने अपने देश की खराबियों के मूल कारण खोजने के लिए क्यों कहा है?
4. देश की सब प्रकार से उन्नति हो, इसके लिए लेखक ने जो उपाय बताए उनमें से किन्हीं चार का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिए।
5. लेखक जनता से मत-मतांतर छोड़कर आपसी प्रेम बढ़ाने का आग्रह क्यों करता है?
6. आज देश की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में नीचे दिए गए वाक्य का आशय स्पष्ट कीजिए– 'जैसे हज़ार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली हैं, वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हज़ार तरह से इंग्लैंड, फरांसीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती हैं।'
7. आपके विचार से देश की उन्नति किस प्रकार संभव है? कोई चार उदारहण तर्क सहित दीजिए।
8. भाषण की किन्हीं चार विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। उदाहरण देकर सिद्ध कीजिए कि पाठ 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?' एक भाषण है।
9. 'अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो' से लेखक का क्या तात्पर्य है? वर्तमान संदर्भों में इसकी प्रासंगिता पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
10. निम्नलिखित गद्यांशों की व्याख्या कीजिए –
    (क) सास के अनुमोदन से............फिर परदेस चला जाएगा।
    (ख) दरिद्र कुटुंबी इस तरह............वही दशा हिंदुस्तान की है।
    (ग) वास्तविक धर्म तो............शोधे और बदले जा सकते हैं।

योग्यता-विस्तार

1. देश की उन्नति के लिए भारतेंदु ने जो आह्वान किया है उसे विस्तार से लिखिए।
2. पाठ में आए बोलचाल के शब्दों की सूची बनाइए और उनके अर्थ लिखिए।
3. भारतेंदु उर्दू में किस उपनाम से कविताएँ लिखते थे? उनकी कुछ उर्दू कविताएँ ढूँढ़कर लिखिए।
4. पृथ्वीराज चौहान की कथा अपने शब्दों में लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

महसूल	–	कर, टैक्स
चुंगी की कतवार	–	म्युनिसिपालिटी का कचरा
रंगमहल	–	भोग-विलास का स्थान
कमबख्ती	–	अभागापन
मर्दुमशुमारी	–	जनगणना
तिफ्ली	–	बचपन से संबंधित

काव्य-खंड

2018-19

2018-19

कबीर

(सन् 1398-1518)

कबीर का जन्म काशी में हुआ था। कहा जाता है कि वे स्वामी रामानंद के शिष्य थे। कबीर ने अपनी रचनाओं में स्वयं को जुलाहा और काशी का निवासी कहा है। जीवन के अंतिम समय में वे मगहर चले गए और वहीं अपना शरीर त्यागा।

कबीर ने विधिवत शिक्षा नहीं पाई थी। उन्होंने कहा भी है कि 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ', किंतु वे प्रारंभ से ही संतों और फ़कीरों की संगति में रहे थे। अत: उनके पास उच्चकोटि के ज्ञान के साथ-साथ मौलिक चिंतन की विलक्षण प्रतिभा भी थी।

निर्गुण भक्त कवियों की ज्ञानमार्गी शाखा में कबीर का सर्वोच्च स्थान है। उनके काव्य में धर्म के बाह्याडंबरों का विरोध है और राम-रहीम की एकता की स्थापना का प्रयत्न भी। उन्होंने जातिगत और धार्मिक पक्षपात का बार-बार खंडन किया है। वे हर प्रकार के भेदभाव से मुक्त मनुष्य की मनुष्यता को जगाने का प्रयत्न करते हैं।

कबीर के काव्य में गुरु-भक्ति, ईश्वर-प्रेम, ज्ञान तथा वैराग्य, सत्संग और साधु-महिमा, आत्म-बोध और जगत-बोध की अभिव्यक्ति है। उनकी कविता अनुभव के ठोस धरातल पर टिकी होने के कारण विश्वसनीय और प्रामाणिक है। कबीर की कविता की भाषा में जनभाषा की सहजता के साथ-साथ भावों की गहराई भी है। उनकी काव्यभाषा में दार्शनिक चिंतन को सहज रूप में व्यक्त करने की शक्ति है।

कबीर ने मूलत: **साखी, सबद,** और **रमैनी** रचे। उनकी रचनाएँ मुख्यत: कबीर ग्रंथावली में संगृहीत हैं, किंतु कबीर पंथ में **बीजक** का विशेष महत्त्व है। कबीर की कुछ रचनाएँ **गुरुग्रंथ साहब** में भी संकलित हैं। पाठ्यपुस्तक में कबीर के दो पद दिए गए हैं। पहले पद में हिंदू और मुसलमान दोनों के धर्माचरण पर प्रहार करते हुए बाह्याडंबरों और कुरीतियों की आलोचना की गई है।

*दूसरे पद में कबीर ने खुद को विरहिणी स्त्री के रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रियतम से घर लौटने की आकांक्षा व्यक्त की है। दाम्पत्य प्रेम और घर की महत्ता इस पद के केंद्र में है। कबीर के ये दोनों पद पारसनाथ तिवारी द्वारा संपादित **कबीर वाणी** से लिए गए हैं।*

1

अरे इन दोहुन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन-तर सोवै यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहिं में करै सगाई।
बाहर से इक मुर्दा लाए धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेंवन बैठीं घर-भर करै बड़ाई।
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनों भाई साधो कौन राह ह्वै जाई।।

2

बालम, आवो हमारे गेह रे।
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहै तुम्हारी नारी, मोकों लगत लाज रे।
दिल से नहीं लगाया, तब लग कैसा सनेह रे।
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह-बन धरै न धीर रे।
कामिन को है बालम प्यारा, ज्यों प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर-उपकारी, पिवसों कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे।।

प्रश्न-अभ्यास

1. 'अरे इन दोहुन राह न पाई' से कबीर का क्या आशय है और वे किस राह की बात कर रहे हैं?
2. इस देश में अनेक धर्म, जाति, मज़हब और संप्रदाय के लोग रहते थे किंतु कबीर हिंदू और मुसलमान की ही बात क्यों करते हैं?
3. 'हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई' के माध्यम से कबीर क्या कहना चाहते हैं? वे उनकी किन विशेषताओं की बात करते हैं?
4. 'कौन राह ह्वै जाई' का प्रश्न कबीर के सामने भी था। क्या इस तरह का प्रश्न आज समाज में मौजूद है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. 'बालम आवो हमारे गेह रे' में कवि किसका आह्वान कर रहा है और क्यों?
6. 'अन्न न भावै नींद न आवै' का क्या कारण है? ऐसी स्थिति क्यों हो गई है?
7. 'कामिन को है बालम प्यारा, ज्यों प्यासे को नीर रे' से कवि का क्या आशय है? स्पष्ट कीजिए।
8. कबीर निर्गुण संत परंपरा के कवि हैं और यह पद (बालम आवो हमारे गेह रे) साकार प्रेम की ओर संकेत करता है। इस संबंध में आप अपने विचार लिखिए।
9. उदाहरण देते हुए दोनों पदों का भाव-सौंदर्य और शिल्प-सौंदर्य लिखिए।

योग्यता-विस्तार

1. कबीर तथा अन्य निर्गुण संतों के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए।
2. कबीर के पद लोकगीत और शास्त्रीय परंपरा में समान रूप से लोकप्रिय हैं और गाए जाते हैं। कुछ प्रमुख गायकों के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं। इनके कैसेट्स अपने विद्यालय में मँगवाकर सुनिए और सुनाइए –
   - कुमार गंधर्व
   - प्रह्लाद सिंह टिप्पाणियाँ
   - भारती बंधु

शब्दार्थ और टिप्पणी

पाइन–तर – पैरों पर, पैरों के पास

पीर – गुरु, आध्यात्मिक शिक्षक, साधना में मार्गदर्शक, अल्लाह का पैगंबर

औलिया – संत, महात्मा, फ़कीर

खाला – मौसी, माँ की बहन

जेंवन – जीमना, भोजन करना

तुरकन – कबीर के समय में जो लोग बाहर से हिंदुस्तान में आए, खासतौर से मुसलमान शासक

गेह – घर

कामिन – प्रेमिका

(कबीर पर आधारित सी.आई.टी., एन.सी.ई.आर.टी. ने श्रव्य-दृश्य कार्यक्रम तैयार किया है, आप उसे देखें)

सूरदास

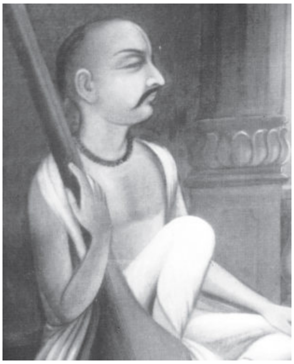

(सन् 1478–1583)

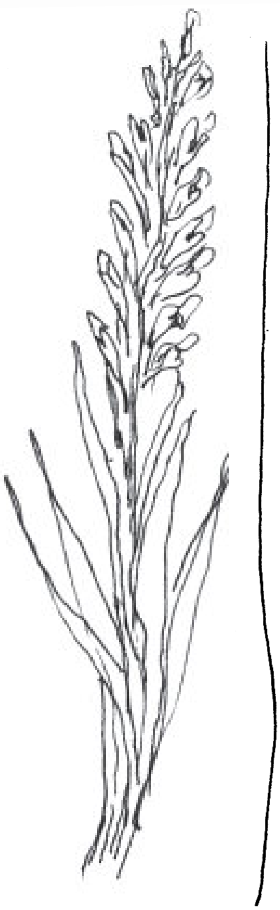

सूरदास का जन्म-स्थान रुनकता या रेणुका क्षेत्र, ज़िला आगरा, उत्तर प्रदेश माना जाता है। कुछ विद्वानों ने दिल्ली के निकट सीही ग्राम को उनका जन्म-स्थान माना है। सूरदास मथुरा और वृंदावन के बीच गऊघाट पर रहते थे। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे तथा पुष्टिमार्गी संप्रदाय के 'अष्टछाप' कवियों में उनकी सर्वाधिक प्रसिद्धि थी।

सूरदास के बारे में कहा जाता है कि वे जन्मांध थे, परंतु उनके काव्य में प्रकृति और श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं आदि का वर्णन देखकर ऐसा नहीं प्रतीत होता कि वे जन्मांध थे। सूरदास सगुणोपासक कृष्णभक्त कवि हैं। उन्होंने कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा जाने तक की कथा और कृष्ण की विभिन्न लीलाओं से संबंधित अत्यंत मनोहर पदों की रचना की है। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन अपनी सहजता, मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता के कारण अद्वितीय है। वे मुख्यत: वात्सल्य और शृंगार के कवि हैं।

सूर का अलंकार-विधान उत्कृष्ट है। उसमें शब्द-चित्र उपस्थित करने एवं प्रसंगों की वास्तविक अनुभूति कराने की पूर्ण क्षमता है। सूर ने अपने काव्य में अन्य अनेक अलंकारों के साथ उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का कुशल प्रयोग किया है।

सूर की भाषा ब्रजभाषा है। साधारण बोलचाल की भाषा को परिष्कृत कर उन्होंने उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया है। उनके काव्य में ब्रजभाषा का स्वाभाविक, सजीव और भावानुकूल प्रयोग है।

*सूर के सभी पद गेय हैं और वे किसी न किसी राग से संबंधित हैं। उनके पदों में काव्य और संगीत का अपूर्व संगम है, इसीलिए **सूरसागर** को राग-सागर भी कहा जाता है। **सूरसारावली** और **साहित्यलहरी** सूरदास की अन्य प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। पाठ्यपुस्तक में उनके दो पद संकलित किए गए हैं।*

पहले पद में कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन है। खेल में हार जाने पर कृष्ण अपनी हार को स्वीकार नहीं करना चाहते। यहाँ बाल-मनोविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण देखा जा सकता है।

दूसरे पद में गोपियाँ आपस में अपनी सखियों से कृष्ण की मुरली के प्रति जो रोष प्रकट करती हैं, उससे कृष्ण के प्रति उनका प्रेम ही प्रकट होता है। मुरली कृष्ण के नज़दीक ही नहीं है, वह जैसा चाहती है, कृष्ण से वैसा ही करवाती है। इस तरह एक तो वह उनकी आत्मीय बन बैठी है और दूसरे वह गोपियों को कृष्ण का कोप-भाजन भी बनवाती है। इस पद में गोपियों का मुरली के प्रति ईर्ष्या-भाव प्रकट हुआ है।

1

खेलन में को काको गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ।
जाति-पाँति हमतैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातै जातैं अधिक तुम्हारै गैयाँ।
रूठहि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाऊँ दियौ करि नंद-दुहैयाँ।।

2

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नंदलालहिं, नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाई ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ौ ह्वै आवति।
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौंढ़ि अधर सज्जा पर, कर पल्लव पलुटावति।
भुकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप-करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति।।

प्रश्न-अभ्यास

1. 'खेलन में को काको गुसैयाँ' पद में कृष्ण और सुदामा के बीच किस बात पर तकरार हुई?
2. खेल में रूठनेवाले साथी के साथ सब क्यों नहीं खेलना चाहते?
3. खेल में कृष्ण के रूठने पर उनके साथियों ने उन्हें डाँटते हुए क्या-क्या तर्क दिए?
4. कृष्ण ने नंद बाबा की दुहाई देकर दाँव क्यों दिया?
5. इस पद से बाल-मनोविज्ञान पर क्या प्रकाश पड़ता है?
6. 'गिरिधर नार नवावति' से सखी का क्या आशय है?
7. कृष्ण के अधरों की तुलना सेज से क्यों की गई है?
8. पठित पदों के आधार पर सूरदास के काव्य की विशेषताएँ बताइए।
9. निम्नलिखित पद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए–

   (क) जाति-पाँति............तुम्हारै गैयाँ।

   (ख) सुनि री............नवावति।

योग्यता-विस्तार

1. खेल में हारकर भी हार न माननेवाले साथी के साथ आप क्या करेंगे? अपने अनुभव कक्षा में सुनाइए।
2. पुस्तक में संकलित 'मुरली तऊ गुपालहिं भावति' पद में गोपियों का मुरली के प्रति ईर्ष्या-भाव व्यक्त हुआ है। गोपियाँ और किस-किस के प्रति ईर्ष्या-भाव रखती थीं, कुछ नाम गिनाइए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

बरबस	–	व्यर्थ ही
गुसैयाँ	–	गुसाईं, स्वामी
रिसैयाँ	–	क्रोध करना
दाउँ दियौ	–	दाँव देना, पारी देना
कटि	–	कमर
सुजान	–	चतुर
कनौड़े	–	कृपा से दबे हुए
गिरिधर	–	गिरि को धारण करने वाले, श्रीकृष्ण
नार	–	गर्दन, स्त्री
कोप	–	क्रोध

देव

(सन् 1673–1767)

महाकवि देव का जन्म इटावा, उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनका पूरा नाम देवदत्त द्विवेदी था। औरंगज़ेब के पुत्र आलमशाह के संपर्क में आने के बाद देव ने अनेक आश्रयदाता बदले, किंतु उन्हें सबसे अधिक संतुष्टि भोगीलाल नाम के सहृदय आश्रयदाता के यहाँ प्राप्त हुई, जिसने उनके काव्य से प्रसन्न होकर उन्हें लाखों की संपत्ति दान की। अनेक आश्रयदाता राजाओं, नवाबों, धनिकों से संबद्ध रहने के कारण राजदरबारों का आडंबरपूर्ण और चाटुकारिता भरा जीवन देव ने बहुत निकट से देखा था। इसीलिए उन्हें ऐसे जीवन से वितृष्णा हो गई थी।

रीतिकालीन कवियों में देव बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। दरबारी अभिरुचि से बँधे होने के कारण उनकी कविता में जीवन के विविध दृश्य नहीं मिलते, किंतु उन्होंने प्रेम और सौंदर्य के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं। अनुप्रास और यमक के प्रति देव में प्रबल आकर्षण है। अनुप्रास द्वारा उन्होंने सुंदर ध्वनिचित्र खींचे हैं। ध्वनि-योजना उनके छंदों में पग-पग पर प्राप्त होती है। शृंगार के उदात्त रूप का चित्रण देव ने किया है।

देव कृत कुल ग्रंथों की संख्या 52 से 72 तक मानी जाती है। उनमें ***रसविलास, भावविलास, भवानीविलास, कुशलविलास, अष्टयाम, सुमिलविनोद, सुजानविनोद, काव्यरसायन, प्रेमदीपिका*** *आदि प्रमुख हैं।*

देव के कवित्त-सवैयों में प्रेम और सौंदर्य के इंद्रधनुषी चित्र मिलते हैं। संकलित सवैयों और कवित्तों में एक ओर जहाँ रूप-सौंदर्य का आलंकारिक चित्रण हुआ है, वहीं रागात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति भी संवेदनशीलता के साथ हुई है। यहाँ उनकी छोटी-छोटी तीन कविताएँ दी गई हैं।

हँसी की चोट *विप्रलंभ शृंगार का अच्छा उदाहरण है। कृष्ण के मुँह फेर लेने से गोपियाँ हँसना ही भूल गई हैं। वे कृष्ण को खोज-खोज कर हार गई हैं। अब तो वे कृष्ण के*

मिलने की आशा पर ही जीवित हैं। उनके शरीर के पंच तत्त्वों में से अब केवल आकाश तत्त्व ही शेष रह गया है।

सपना *में कृष्ण स्वप्न में गोपी को अपने साथ झूला झूलने को कहते हैं। तभी गोपी की नींद टूट जाती है, और उसका स्वप्न खंडित हो जाता है। इसमें संयोग–वियोग का मार्मिक चित्रण हुआ है।* ***दरबार*** *में पतनशील और निष्क्रिय सामंती व्यवस्था पर देव ने अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।*

हँसी की चोट

साँसनि ही सौं समीर गयो अरु, आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तन की तनुता करि।।
'देव' जियै मिलिबेही की आस कि, आसहू पास अकास रह्यो भरि,
जा दिन तै मुख फेरि हरै हँसि, हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।।

सपना

झहरि-झहरि झीनी बूँद हैं परति मानो,
घहरि-घहरि घटा घेरी है गगन में।
आनि कह्यो स्याम मो सौं 'चलौ झूलिबे को आज'
फूली न समानी भई ऐसी हौं मगन मैं।।
चाहत उठ्योई उठि गई सो निगोड़ी नींद,
सोए गए भाग मेरे जानि वा जगन में।
आँख खोलि देखौं तौ न घन हैं, न घनश्याम,
वेई छाई बूँदैं मेरे आँसु ह्वै दृगन में।।

दरबार

साहिब अंध, मुसाहिब मूक, सभा बहिरी, रंग रीझ को माच्यो।
भूल्यो तहाँ भटक्यो घट औघट बूढ़िबे को काहू कर्म न बाच्यो।।
भेष न सूझ्यो, कह्यो समझ्यो न, बतायो सुन्यो न, कहा रुचि राच्यो।
'देव' तहाँ निबरे नट की बिगरी मति को सगरी निसि नाच्यो।।

प्रश्न-अभ्यास

1. 'हँसी की चोट' सवैये में कवि ने किन पंच तत्त्वों का वर्णन किया है तथा वियोग में वे किस प्रकार विदा होते हैं?
2. नायिका सपने में क्यों प्रसन्न थी और वह सपना कैसे टूट गया?
3. 'सपना' कवित्त का भाव-सौंदर्य लिखिए।
4. 'दरबार' सवैये में किस प्रकार के वातावरण का वर्णन किया गया है?
5. दरबार में गुणग्राहकता और कला की परख को किस प्रकार अनदेखा किया जाता है?
6. भाव स्पष्ट कीजिए–
   (क) हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।
   (ख) सोए गए भाग मेरे जानि वा जगन में।
   (ग) वेई छाई बूँदैं मेरे आँसु ह्वै दृगन में।
   (घ) साहिब अंध, मुसाहिब मूक, सभा बहिरी।
7. देव ने दरबारी चाटुकारिता और दंभपूर्ण वातावरण पर किस प्रकार व्यंग्य किया है?
8. निम्नलिखित पद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या करिए–
   (क) साँसनि ही······तनुता करि।
   (ख) झहरि······गगन में।
   (ग) साहिब अंध······बाच्यो।

9. देव के अलंकार प्रयोग और भाषा प्रयोग के कुछ उदाहरण पठित पदों से लिखिए।

योग्यता-विस्तार

1. 'दरबार' सवैये को भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटक 'अंधेर नगरी' के समकक्ष रखकर विवेचना कीजिए।
2. देव के समान भाषा प्रयोग करने वाले किसी अन्य कवि की रचनाओं का संकलन कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

तनुता - कृशता, दुबलापन
हेरी - देखकर
हरि - हरने वाला, कृष्ण
झहरि - बरसाती बूँदों की झड़ी लगना
निगोड़ी - निर्दयी
मुसाहिब - राजा के दरबारी
औघट - कठिन, दुर्गम मार्ग
निबरे नट - अपनी कला या प्रतिभा से भटका हुआ कलाकार
मूक - चुप
सगरी - संपूर्ण

पद्माकर

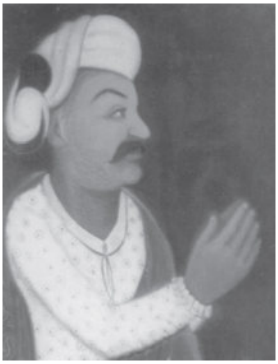

(सन् 1753-1833)

रीतिकाल के कवियों में पद्माकर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे बाँदा, उत्तर प्रदेश के निवासी थे। उनके परिवार का वातावरण कवित्वमय था। उनके पिता के साथ-साथ उनके कुल के अन्य लोग भी कवि थे, अतः उनके वंश का नाम ही 'कवीश्वर' पड़ गया था। वे अनेक राज-दरबारों में रहे। बूँदी दरबार की ओर से उन्हें बहुत सम्मान, दान आदि मिला। पन्ना महाराज ने उन्हें बहुत से गाँव दिए। जयपुर नरेश ने उन्हें ***कविराज शिरोमणि*** *की उपाधि दी और साथ में जागीर भी। उनकी रचनाओं में* ***हिम्मतबहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, रामरसायन, गंगा लहरी*** *आदि प्रमुख हैं।*

पद्माकर ने सजीव मूर्त विधान करने वाली कल्पना के द्वारा प्रेम और सौंदर्य का मार्मिक चित्रण किया है। जगह-जगह लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग द्वारा वे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावानुभूतियों को सहज ही मूर्तिमान कर देते हैं। उनके ऋतु वर्णन में भी इसी जीवंतता और चित्रात्मकता के दर्शन होते हैं। उनके आलंकारिक वर्णन का प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी पड़ा है। पद्माकर की भाषा सरस, सुव्यवस्थित और प्रवाहपूर्ण है। काव्य-गुणों का पूरा निर्वाह उनके छंदों में हुआ है। गतिमयता और प्रवाहपूर्णता की दृष्टि से सवैया और कवित्त पर जैसा अधिकार पद्माकर का था, वैसा अन्य किसी कवि का नहीं दिखाई पड़ता। भाषा पर पद्माकर का अद्भुत अधिकार था। अनुप्रास द्वारा ध्वनिचित्र खड़ा करने में वे अद्वितीय हैं।

पाठ्यपुस्तक में संकलित पहले कवित्त में कवि ने प्रकृति-सौंदर्य का वर्णन किया है। प्रकृति का संबंध विभिन्न ऋतुओं से है। वसंत ऋतुओं का राजा है। वसंत के आगमन पर प्रकृति, विहग और मनुष्यों की दुनिया में जो सौंदर्य संबंधी परिवर्तन आते हैं, कवि ने इसमें उसी को लक्षित किया है।

दूसरे कवित्त में गोपियाँ लोक-निंदा और सखी-समाज की कोई परवाह किए बिना कृष्ण के प्रेम में डूबे रहना चाहती हैं। अंतिम कवित्त में कवि ने वर्षा ॠतु के सौंदर्य को भौंरों के गुंजार, मोरों के शोर और सावन के झूलों में देखा है। मेघ के बरसने में कवि नेह को बरसते देखता है।

1

औरै भाँति कुंजन में गुंजरत भीर भौंर,
औरे डौर झौरन पैं बौरन के ह्वै गए।
कहैं पद्माकर सु औरै भाँति गलियानि,
छलिया छबीले छैल औरै छबि छ्वै गए।
औरै भाँति बिहग-समाज में अवाज होति,
ऐसे रितुराज के न आज दिन द्वै गए।
औरै रस औरै रीति औरै राग औरै रंग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गए।।

2

गोकुल के कुल के गली के गोप गाउन के
जौ लगि कछू-को-कछू भाखत भनै नहीं।
कहैं पद्माकर परोस-पिछवारन के,
द्वारन के दौरि गुन-औगुन गनैं नहीं।
तौ लौं चलित चतुर सहेली याहि कौऊ कहूँ,
नीके कै निचौरे ताहि करत मनै नहीं।
हौं तो स्याम-रंग में चुराई चित चोराचोरी,
बोरत तौं बोर्‌यौ पै निचोरत बनै नहीं।।

3

भौंरन को गुंजन बिहार बन कुंजन में,
मंजुल मलारन को गावनो लगत है।
कहैं पद्माकर गुमानहूँ तें मानहुँ तैं,
प्रानहूँ तैं प्यारो मनभावनो लगत है।
मोरन को सोर घनघोर चहुँ ओरन,
हिंडोरन को बृंद छवि छावनो लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में,
सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है।।

प्रश्न-अभ्यास

1. पहले छंद में कवि ने किस ऋतु का वर्णन किया है?
2. इस ऋतु में प्रकृति में क्या परिवर्तन होते हैं?
3. 'औरै' की बार-बार आवृत्ति से अर्थ में क्या विशिष्टता उत्पन्न हुई है?
4. 'पद्माकर के काव्य में अनुप्रास की योजना अनूठी बन पड़ी है।' उक्त कथन को प्रथम छंद के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
5. होली के अवसर पर सारा गोकुल गाँव किस प्रकार रंगों के सागर में डूब जाता है? दूसरे छंद के आधार पर लिखिए।
6. 'बोरत तौं बोर्‌यौ पै निचोरत बनै नहीं' इस पंक्ति में गोपिका के मन का क्या भाव व्यक्त हुआ है?
7. पद्माकर ने किस तरह भाषा शिल्प से भाव-सौंदर्य को और अधिक बढ़ाया है? सोदाहरण लिखिए।

8. तीसरे छंद में कवि ने सावन ऋतु की किन-किन विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है?
9. संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए–
   (क) औरै भाँति कुंजन················छबि छ्वै गए।
   (ख) तौ लौं चलित················बनै नहीं।
   (ग) कहैं पद्माकर················लगत है।

योग्यता-विस्तार

1. वसंत एवं सावन संबंधी अन्य कवियों की कविताओं का संकलन कीजिए।
2. पद्माकर के भाषा-सौंदर्य को प्रकट करनेवाले अन्य कवित्त, सवैये भी संकलित कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

औरै – और ही प्रकार का
कुंजन – झाड़ियों में
भीर-भौंर – भौंरों का समूह
छबीले-छैल – सुंदर नवयुवक
भाखत भनै नहीं – कहा नहीं जा सकता, वर्णन करते नहीं बनता
बोरत – डुबोना
निचौरे – निचोड़ना
मंजुल – सुंदर
मलारन – मल्हार राग
हिंडोरन – झूला

सुमित्रानंदन पंत

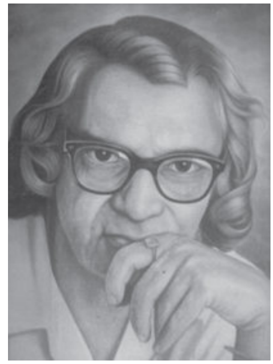

(सन् 1900–1978)

सुमित्रानंदन पंत का जन्म अल्मोड़ा, उत्तरांचल के कौसानी गाँव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अल्मोड़ा में तथा उच्च शिक्षा बनारस और इलाहाबाद में हुई। सन् 1919 में गांधी जी के एक भाषण से प्रभावित होकर उन्होंने बिना परीक्षा दिए ही अपनी शिक्षा अधूरी छोड़ दी और स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय हो गए।

पंत जी ने बचपन से ही काव्य-रचना शुरू कर दी थी। लेकिन उनका वास्तविक कविकर्म बाद में प्रारंभ हुआ। उनका काव्य-संग्रह ***पल्लव*** *और उसकी भूमिका हिंदी कविता में युगांतकारी महत्त्व रखते हैं। उन्होंने सन् 1938 में* ***रूपाभ*** नामक *पत्रिका निकाली, जिसकी प्रगतिशील साहित्य-चेतना के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पंत जी प्रकृति-प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। छायावादी कवियों में वे सबसे अधिक भावुक तथा कल्पनाशील कवि के रूप में चर्चित रहे हैं। उनकी कविताओं में पल-पल परिवर्तित होने वाली प्रकृति के गत्यात्मक, मूर्त और सजीव चित्र मिलते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ ही पंत मानव सौंदर्य के भी कुशल चितेरे हैं। कल्पनाशीलता के साथ-साथ रहस्यानुभूति और मानवतावादी दृष्टि उनके काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं।*

पंत का संपूर्ण साहित्य आधुनिक चेतना का वाहक है। उन्होंने आधुनिक हिंदी कविता को अभिव्यंजना की नयी पद्धति और काव्य-भाषा को नवीन दृष्टि से समृद्ध किया है। पंत की कविता में भाषा और संवेदना के सूक्ष्म और अंतरंग संबंधों की पहचान है, जिससे हिंदी काव्य-भाषा में नए सौंदर्य-बोध का विकास हुआ है। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी की काव्य-भाषा की व्यंजना शक्ति का विकास किया और उसे भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अधिक सक्षम बनाया, इसीलिए उन्हें शब्द-शिल्पी कवि भी कहा जाता है।

सुमित्रानंदन पंत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हुए थे, जिनमें – ***सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार*** *तथा* ***भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार*** *प्रमुख हैं।*

पंत जी की महत्त्वपूर्ण काव्य कृतियाँ हैं – ***वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, चिदंबरा*** *आदि। पंत जी ने छोटी कविताओं और गीतों के साथ* ***परिवर्तन*** *जैसी लंबी कविता और* ***लोकायतन*** *नामक महाकाव्य की रचना भी की है।*

पाठ्यपुस्तक में संकलित कविता ***संध्या के बाद*** *उनके* ***ग्राम्या*** *संकलन से ली गई है।* ***ग्राम्या*** *का मूल स्वर ग्रामीण जन-जीवन के विविध सामाजिक यथार्थ से जुड़ता है। इस कविता में ढलती हुई साँझ के समय गाँव के वातावरण, जनजीवन और प्रकृति का सुंदर चित्रण हुआ है, जिसमें वृद्धाएँ, विधवाएँ, खेत से घर लौटते किसान और पशु-पक्षियों का चित्रण उल्लेखनीय है।*

संध्या के बाद

सिमटा पंख साँझ की लाली
जा बैठी अब तरु शिखरों पर
ताम्रपर्ण पीपल से, शतमुख
झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर!
ज्योति स्तंभ-सा धँस सरिता में
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल,
बृहद् जिह्म विश्लथ केंचुल-सा
लगता चितकबरा गंगाजल!
धूपछाँह के रंग की रेती
अनिल ऊर्मियों से सर्पांकित
नील लहरियों में लोड़ित
पीला जल रजत जलद से बिंबित!
सिकता, सलिल, समीर सदा से
स्नेह पाश में बँधे समुज्ज्वल,
अनिल पिघलकर सलिल, सलिल
ज्यों गति द्रव खो बन गया लवोपल
शंख घंट बजते मंदिर में
लहरों में होता लय कंपन,
दीप शिखा-सा ज्वलित कलश

नभ में उठकर करता नीराजन!
तट पर बगुलों-सी वृद्धाएँ
विधवाएँ जप ध्यान में मगन,
मंथर धारा में बहता
जिनका अदृश्य, गति अंतर-रोदन!
दूर तमस रेखाओं-सी,
उड़ती पंखों की गति-सी चित्रित
सोन खगों की पाँति
आर्द्र ध्वनि से नीरव नभ करती मुखरित!
स्वर्ण चूर्ण-सी उड़ती गोरज
किरणों की बादल-सी जलकर,
सनन् तीर-सा जाता नभ में
ज्योतित पंखों कंठों का स्वर!
लौटे खग, गायें घर लौटीं
लौटे कृषक श्रांत श्लथ डग धर
छिपे गृहों में म्लान चराचर
छाया भी हो गई अगोचर,
लौट पैंठ से व्यापारी भी
जाते घर, उस पार नाव पर,
ऊँटों, घोड़ों के संग बैठे
खाली बोरों पर, हुक्का भर!
जाड़ों की सूनी द्वाभा में
झूल रही निशि छाया गहरी,
डूब रहे निष्प्रभ विषाद में
खेत, बाग, गृह, तरु, तट, लहरी!

बिरहा गाते गाड़ी वाले,
भूँक-भूँककर लड़ते कूकर,
हुआँ-हुआँ करते सियार
देते विषण्ण निशि बेला को स्वर!

माली की मँड़ई से उठ,
नभ के नीचे नभ-सी धूमाली
मंद पवन में तिरती
नीली रेशम की-सी हलकी जाली!
बत्ती जला दुकानों में
बैठे सब कस्बे के व्यापारी,
मौन मंद आभा में
हिम की ऊँघ रही लंबी अँधियारी!
धुआँ अधिक देती है
टिन की ढबरी, कम करती उजियाला,
मन से कढ़ अवसाद श्रांति
आँखों के आगे बुनती जाला!
छोटी-सी बस्ती के भीतर
लेन-देन के थोथे सपने
दीपक के मंडल में मिलकर
मँडराते घिर सुख-दुख अपने!
कँप-कँप उठते लौ के संग
कातर उर क्रंदन, मूक निराशा,
क्षीण ज्योति ने चुपके ज्यों
गोपन मन को दे दी हो भाषा!
लीन हो गई क्षण में बस्ती,

मिट्टी खपरे के घर आँगन,
भूल गये लाला अपनी सुधि,
भूल गया सब ब्याज, मूलधन!
सकुची-सी परचून किराने की ढेरी
लग रहीं ही तुच्छतर,
इस नीरव प्रदोष में आकुल
उमड़ रहा अंतर जग बाहर!
अनुभव करता लाला का मन,
छोटी हस्ती का सस्तापन,
जाग उठा उसमें मानव,
औ' असफल जीवन का उत्पीड़न!
दैन्य दुःख अपमान ग्लानि
चिर क्षुधित पिपासा, मृत अभिलाषा,
बिना आय की क्लांति बन रही
उसके जीवन की परिभाषा!
जड़ अनाज के ढेर सदृश ही
वह दिन-भर बैठा गद्दी पर
बात-बात पर झूठ बोलता
कौड़ी-की स्पर्धा में मर-मर!
फिर भी क्या कुटुंब पलता है?
रहते स्वच्छ सुघर सब परिजन?
बना पा रहा वह पक्का घर?
मन में सुख है? जुटता है धन?
खिसक गई कंधों से कथड़ी
ठिठुर रहा अब सर्दी से तन,
सोच रहा बस्ती का बनिया

घोर विवशता का निज कारण!
शहरी बनियों-सा वह भी उठ
क्यों बन जाता नहीं महाजन?
रोक दिए हैं किसने उसकी
जीवन उन्नति के सब साधन?
यह क्या संभव नहीं
व्यवस्था में जग की कुछ हो परिवर्तन?
कर्म और गुण के समान ही
सकल आय-व्यय का हो वितरण?
घुसे घरौंदों में मिट्टी के
अपनी-अपनी सोच रहे जन,
क्या ऐसा कुछ नहीं,
फूँक दे जो सबमें सामूहिक जीवन?
मिलकर जन निर्माण करे जग,
मिलकर भोग करें जीवन का,
जन विमुक्त हो जन-शोषण से,
हो समाज अधिकारी धन का?
दरिद्रता पापों की जननी,
मिटें जनों के पाप, ताप, भय,
सुंदर हों अधिवास, वसन, तन,
पशु पर फिर मानव की हो जय?
व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी
दोषी जन के दु:ख क्लेश की,
जन का श्रम जन में बँट जाए,
प्रजा सुखी हो देश देश की!
टूट गया वह स्वप्न वणिक का,

आई जब बुढ़िया बेचारी,
आध-पाव आटा लेने
लो, लाला ने फिर डंडी मारी!
चीख उठा घुघ्घू डालों में
लोगों ने पट दिए द्वार पर,
निगल रहा बस्ती को धीरे,
गाढ़ अलस निद्रा का अजगर!

प्रश्न-अभ्यास

1. संध्या के समय प्रकृति में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं, कविता के आधार पर लिखिए।
2. पंत जी ने नदी के तट का जो वर्णन किया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।
3. बस्ती के छोटे से गाँव के अवसाद को किन-किन उपकरणों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है?
4. लाला के मन में उठनेवाली दुविधा को अपने शब्दों में लिखिए।
5. सामाजिक समानता की छवि की कल्पना किस तरह अभिव्यक्त हुई है?
6. 'कर्म और गुण के समान..........हो वितरण' पंक्ति के माध्यम से कवि कैसे समाज की ओर संकेत कर रहा है?
7. निम्नलिखित पंक्तियों का काव्य-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए –

   (क) तट पर बगुलों-सी वृद्धाएँ
   विधवाएँ जप ध्यान में मगन,
   मंथर धारा में बहता
   जिनका अदृश्य, गति अंतर-रोदन!

8. आशय स्पष्ट कीजिए-

   (क) ताम्रपर्ण, पीपल से, शतमुख/ झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर!
   (ख) दीप शिखा-सा ज्वलित कलश/ नभ में उठकर करता नीराजन!
   (ग) सोन खगों की पाँति/आर्द्र ध्वनि से नीरव नभ करती मुखरित!
   (घ) मन से कढ़ अवसाद श्रांति/आँखों के आगे बुनती जाला!
   (ङ) क्षीण ज्योति ने चुपके ज्यों/गोपन मन को दे दी हो भाषा!

(च) बिना आय की क्लांति बन रही/ उसके जीवन की परिभाषा!

(छ) व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी/ दोषी जन के दु:ख क्लेश की।

योग्यता-विस्तार

1. ग्राम्य जीवन से संबंधित कविताओं का संकलन कीजिए।
2. कविता में निम्नलिखित उपमान किसके लिए आए हैं, लिखिए –

(क) ज्योति स्तंभ-सा – ....

(ख) केंचुल-सा – ....

(ग) दीपशिखा-सा – ....

(घ) बगुलों-सी – ....

(ङ) स्वर्ण चूर्ण-सी – ....

(च) सनन् तीर-सा – ....

शब्दार्थ और टिप्पणी

तरुशिखर - वृक्ष का ऊपरी हिस्सा

ताम्रपर्ण - ताँबे की तरह लाल रंग के पत्ते

विश्लथ - थका हुआ सा

जिह्म - मंद

ऊर्मियों - लहरों

लोड़ित - मथित (मथा हुआ)

सिकता - रेत, बालू

आर्द्र - नम

गोरज - गोधूलि

मँड़ई - झोपड़ी, कुटिया

ढिबरी - मिट्टी के तेल से जलनेवाला छोटा-सा दीपक

खपरा - छत बनाने के लिए पकाई हुई मिट्टी की आकृति

कथड़ी - पुराने कपड़े से बनाया गया लेवा, गुदड़ी

अधिवास - निवास-स्थान, घर

महादेवी वर्मा

(सन् 1907–1987)

महादेवी वर्मा का जन्म फ़र्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ और प्रारंभिक शिक्षा इंदौर में हुई। मात्र 12 वर्ष की उम्र में ही उनका विवाह हो गया। प्रयाग विश्वविद्यालय से उन्होंने संस्कृत में एम.ए. किया। तत्पश्चात् उनकी नियुक्ति प्रयाग महिला विद्यापीठ में हो गई, जहाँ वे लंबे समय तक प्राचार्य के पद पर कार्य करती रहीं। उनके जीवन और चिंतन पर स्वाधीनता आंदोलन और गांधी जी के विचारों के साथ-साथ गौतम बुद्ध के दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा है। महादेवी जी भारतीय समाज और हिंदी साहित्य में स्त्रियों को उचित स्थान दिलाने के लिए विचार और व्यवहार के स्तर पर जीवनभर प्रयत्नशील रहीं। उन्होंने कुछ वर्षों तक **चाँद** *नाम की पत्रिका का संपादन भी किया था, जिसके संपादकीय लेखों के माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज में स्त्रियों की पराधीनता के यथार्थ और स्वाधीनता की आकांक्षा का विवेचन किया है।*

महादेवी वर्मा के काव्य में जागरण की चेतना के साथ स्वतंत्रता की कामना है और दुःख की अनुभूति के साथ करुणा का बोध भी। दूसरे छायावादी कवियों की तरह उनके गीतों में भी प्रकृति-सौंदर्य के कई रूप मिलते हैं। महादेवी वर्मा के प्रगीतों में भक्तिकाल के गीतों की प्रतिध्वनि और लोकगीतों की अनुगूँज है, इसके साथ ही उनके गीत आधुनिक बौद्धिक मानस के द्वंद्वों को भी अभिव्यक्त करते हैं।

महादेवी वर्मा के गीत अपने विशिष्ट रचाव और संगीतात्मकता के कारण अत्यंत आकर्षक हैं। लाक्षणिकता, चित्रमयता और रहस्याभास उनके गीतों की विशेषता है। महादेवी जी ने नए बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से प्रगीत की अभिव्यक्ति शक्ति का नया विकास किया। उनकी काव्य-भाषा प्रायः तत्सम शब्दों से निर्मित है। भारत सरकार द्वारा उन्हें ***पद्मभूषण*** *से सम्मानित किया गया।* ***यामा*** *के लिए उन्हें* ***भारतीय ज्ञानपीठ*** *पुरस्कार दिया गया।*

*महादेवी वर्मा की प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं – **नीहार**, **रश्मि**, **नीरजा**, **सांध्यगीत**, **यामा** और **दीपशिखा**। कविता के अतिरिक्त उन्होंने सशक्त गद्य भी रचा है, जिसमें रेखाचित्र तथा संस्मरण प्रमुख हैं। **पथ के साथी**, **अतीत के चलचित्र** तथा **स्मृति की रेखाएँ** उनकी कलात्मक गद्य रचनाएँ हैं। **शृंखला की कड़ियाँ** में महादेवी वर्मा ने भारतीय समाज में स्त्री जीवन के अतीत, वर्तमान और भविष्य का मूल्यांकन किया है।*

*पाठ्यपुस्तक में उनके दो गीत संकलित किए गए हैं। पहला गीत स्वाधीनता आंदोलन की प्रेरणा से रचित जागरण गीत है। इसमें भीषण कठिनाइयों की चिंता न करते हुए कोमल बंधनों के आकर्षण से मुक्त होकर अपने लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते रहने का आह्वान है। मोह-माया के बंधन में जकड़े मानव को जगाते हुए महादेवी ने कहा है – **जाग तुझको दूर जाना।***

*दूसरा गीत **सब आँखों के आँसू उजले** में प्रकृति के उस स्वरूप की चर्चा हुई है जो सत्य है, यथार्थ है और जो लक्ष्य तक पहुँचने में मनुष्य की मदद करता है। प्रकृति के इस परिवर्तनशील यथार्थ से जुड़कर मनुष्य अपने सपनों को साकार करने की राहें चुन सकता है।*

जाग तुझको दूर जाना

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!
जाग तुझको दूर जाना!

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कंप हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;

आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जागकर विद्युत-शिखाओं में निठुर तूफ़ान बोले!

पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना!
जाग तुझको दूर जाना!

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले?

विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले?

तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना!
जाग तुझको दूर जाना!

वज्र का उर एक छोटे अश्रु-कण में धो गलाया,
दे किसे जीवन सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया?

सो गई आँधी मलय की वात का उपधान ले क्या?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया?

अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?
जाग तुझको दूर जाना!

कह न ठंडी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;

हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी!

है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना!
जाग तुझको दूर जाना!

सब आँखों के आँसू उजले

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला!
जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरंद भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल
देता झर यह सौरभ बिखरा!
दोनों संगी, पथ एक किंतु कब दीप खिला कब फूल जला?

वह अचल धरा को भेंट रहा
शत-शत निर्झर में हो चंचल,

चिर परिधि बना भू को घेरे
इसका नित उर्मिल करुणा-जल
कब सागर उर पाषाण हुआ, कब गिरि ने निर्मम तन बदला?

नभ तारक-सा खंडित पुलकित
यह क्षुर-धारा को चूम रहा,
वह अंगारों का मधु-रस पी
केशर-किरणों-सा झूम रहा,
अनमोल बना रहने को कब टूटा कंचन हीरक पिघला?

नीलम मरकत के संपुट दो
जिनमें बनता जीवन-मोती,
इसमें ढलते सब रंग-रूप
उसकी आभा स्पंदन होती!
जो नभ में विद्युत-मेघ बना वह रज में अंकुर हो निकला!

संसृति के प्रति पग में मेरी
साँसों का नव अंकन चुन लो,
मेरे बनने-मिटने में नित
अपनी साधों के क्षण गिन लो!
जलते खिलते बढ़ते जग में घुलमिल एकाकी प्राण चला!

सपने-सपने में सत्य ढला!

प्रश्न-अभ्यास

जाग तुझको दूर जाना

1. 'जाग तुझको दूर जाना' कविता में कवयित्री मानव को किन विपरीत स्थितियों में आगे बढ़ने के लिए उत्साहित कर रही है?
2. कवयित्री किस मोहपूर्ण बंधन से मुक्त होकर मानव को जागृति का संदेश दे रही है?
3. 'जाग तुझको दूर जाना' स्वाधीनता आंदोलन की प्रेरणा से रचित एक जागरण गीत है। इस कथन के आधार पर कविता की मूल संवेदना को लिखिए।
4. निम्नलिखित पंक्तियों का काव्य-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए –
   (क) विश्व का क्रंदन.............अपने लिए कारा बनाना!
   (ख) कह न ठंडी साँस.............सजेगा आज पानी।
   (ग) है तुझे अंगार-शय्या.............कलियाँ बिछाना!
5. कवयित्री ने स्वाधीनता के मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों को इंगित कर मुनष्य के भीतर किन गुणों का विस्तार करना चाहा है? कविता के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

सब आँखों के आसूँ उजले

6. महादेवी वर्मा ने 'आसूँ' के लिए 'उजले' विशेषण का प्रयोग किस संदर्भ में किया है और क्यों?
7. सपनों को सत्य रूप में ढालने के लिए कवयित्री ने किन यथार्थपूर्ण स्थितियों का सामना करने को कहा है?
8. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए –
   (क) आलोक लुटाता वह.........कब फूल जला?
   (ख) नभ तारक-सा.........हीरक पिघला?
9. काव्य-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए।
   संसृति के प्रति पग में मेरी.........एकाकी प्राण चला!

योग्यता-विस्तार

1. स्वाधीनता आंदोलन के कुछ जागरण गीतों का एक संकलन तैयार कीजिए।

2. महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं को पढ़िए और महादेवी वर्मा की पुस्तक 'पथ के साथी' से सुभद्रा कुमारी चौहान का संस्मरण पढ़िए तथा उनके मैत्री-संबंधों पर निबंध लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

व्यस्त बाना	–	बिखरा या अस्त-व्यस्त वेश
कारा	–	बंधन, कैद
सजग	–	सावधान
उनींदी	–	नींद से भरी हुई
व्योम	–	आकाश
मलय	–	पर्वत जहाँ चंदन का वन है
वात का उपधान	–	हवा का सहारा
मृदुल	–	कोमल
मकरंद	–	फूलों का रस
नभ-तारक	–	आकाश का तारा
पाषाण	–	पत्थर
मरकत	–	पन्ना
संसृति	–	सृष्टि, संसार

नरेंद्र शर्मा

(सन् 1923–1989)

नरेंद्र शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश में बुलंदशहर ज़िले के जहाँगीरपुर गाँव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव में हुई, बाद में प्रयाग विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. किया। वे शुरू से ही राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रहे। इसी सक्रियता के कारण उन्हें सन् 1940 से 1942 तक जेल में रहना पड़ा। 1943 में वे मुंबई चले गए और फ़िल्मों के लिए गीत और संवाद लिखने लगे तथा अंतिम समय तक फ़िल्मों से ही जुड़े रहे।

नरेंद्र शर्मा के प्रसिद्ध काव्य-संग्रह – **प्रभात फेरी**, **प्रवासी के गीत**, **पलाशवन**, **मिट्टी और फूल**, **हंसमाला**, **रक्तचंदन** आदि हैं।

नरेंद्र शर्मा मूलतः गीतकार हैं। उनके अधिकांश गीत यथार्थवादी दृष्टिकोण से लिखे गए हैं। वे प्रगतिवादी चेतना से प्रभावित थे। उन्होंने प्रकृति के सुंदर चित्र उकेरे हैं। व्याकुल प्रेम की अभिव्यक्ति और प्रकृति के कोमल रूप के चित्रण में उन्हें विशेष सफलता मिली है। अंतिम दौर की रचनाएँ आध्यात्मिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि लिए हुए हैं। फ़िल्मों के लिए लिखे गए उनके गीत साहित्यिकता के कारण अलग से पहचाने जाते हैं। नरेंद्र शर्मा की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। संगीतात्मकता और स्पष्टता उनके गीतों की विशेषता है।

पाठ्यपुस्तक में नरेंद्र शर्मा की कविता **नींद उचट जाती है** दी गई है। इस कविता में कवि ने एक ऐसी लंबी रात का वर्णन किया है जो समाप्त होने का नाम नहीं ले रही है और कवि को प्रकाश की कोई किरण भी नहीं दिखाई दे रही है। कविता का यह अँधेरा दो स्तरों पर है, व्यक्ति के स्तर पर यह दुःस्वप्न और निराशा का अँधेरा है तथा समाज के स्तर पर विकास, चेतना और जागृति के न होने का अँधेरा है। कवि जागरण के द्वारा इन दोनों अँधेरों से मुक्त होने और प्रकाश का कपाट खोलने की बात करता है।

नींद उचट जाती है

जब-तब नींद उचट जाती है
पर क्या नींद उचट जाने से
रात किसी की कट जाती है?

देख-देख दुःस्वप्न भयंकर,
चौंक-चौंक उठता हूँ डरकर;
पर भीतर के दुःस्वप्नों से
अधिक भयावह है तम बाहर!
आती नहीं उषा, बस केवल
आने की आहट आती है!

देख अँधेरा नयन दूखते,
दुश्चिंता में प्राण सूखते!
सन्नाटा गहरा हो जाता,
जब-जब श्वान शृगाल भूँकते!
भीत भावना, भोर सुनहली
नयनों के न निकट लाती है!

मन होता है फिर सो जाऊँ,
गहरी निद्रा में खो जाऊँ;
जब तक रात रहे धरती पर,
चेतन से फिर जड़ हो जाऊँ!
उस करवट अकुलाहट थी, पर
नींद न इस करवट आती है!

करवट नहीं बदलता है तम,
मन उतावलेपन में अक्षम!
जगते अपलक नयन बावले,
थिर न पुतलियाँ, निमिष गए थम!
साँस आस में अटकी, मन को
आस रात भर भटकाती है!

जागृति नहीं अनिद्रा मेरी,
नहीं गई भव-निशा अँधेरी!
अंधकार केंद्रित धरती पर,
देती रही ज्योति चकफेरी!
अंतर्नयनों के आगे से
शिला न तम की हट पाती है!

प्रश्न-अभ्यास

1. कविता के आधार पर बताइए कि कवि की दृष्टि में बाहर का अँधेरा भीतरी दु:स्वप्नों से अधिक भयावह क्यों है?
2. अंदर का भय कवि के नयनों को सुनहली भोर का अनुभव क्यों नहीं होने दे रहा है?

3. कवि को किस प्रकार की आस रातभर भटकाती है और क्यों?
4. कवि चेतन से फिर जड़ होने की बात क्यों कहता है?
5. अंधकार भरी धरती पर ज्योति चकफेरी क्यों देती है? स्पष्ट कीजिए।
6. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए –

   (क) आती नहीं उषा, बस केवल
   आने की आहट आती है!

   (ख) करवट नहीं बदलता है तम,
   मन उतावलेपन में अक्षम!

7. जागृति नहीं अनिद्रा मेरी,
   नहीं गई भव-निशा अँधेरी!

   उक्त पंक्तियों में 'जागृति', 'अनिद्रा' और 'भव-निशा अँधेरी' से कवि का सामाजिक संदर्भों में क्या अभिप्राय है?

8. 'अंतर्नयनों के आगे से शिला न तम की हट पाती है' पंक्ति में 'अंतर्नयन' और 'तम की शिला' से कवि का क्या तात्पर्य है?

योग्यता-विस्तार

1. क्या आपको लगता है कि बाहर का अँधेरा भीतर के अँधेरे से ज़्यादा घना है? चर्चा करें।
2. संगीत शिक्षक की सहायता से इस गीत को लयबद्ध कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

दुश्‍िंचता – दुख देनेवाली चिंता
भीत भावना – भय और शंका की भावना
निमिष – क्षण, पल
भव-निशा – संसार रूपी भयावह रात
चकफेरी – चारों ओर चक्कर काटना
अंतर्नयन – अंतर्दृष्टि

नागार्जुन

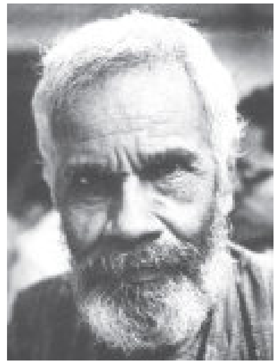

(सन् 1911–1998)

तरौनी गाँव, ज़िला मधुबनी, बिहार के निवासी, नागार्जुन का जन्म अपने ननिहाल सतलखा, ज़िला दरभंगा, बिहार में हुआ था। उनका मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र था। नागार्जुन की प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय संस्कृत पाठशाला में हुई। बाद में इस निमित्त वाराणसी और कोलकाता भी गए। सन् 1936 में वे श्रीलंका गए और वहीं बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए। सन् 1938 में वे स्वदेश वापस आए। फक्कड़पन और घुमक्कड़ी उनके जीवन की प्रमुख विशेषता रही है। उन्होंने कई बार संपूर्ण भारत का भ्रमण किया।

राजनीतिक कार्यकलापों के कारण कई बार उन्हें जेल भी जाना पड़ा। सन् 1935 में उन्होंने **दीपक** *(मासिक) तथा 1942–43 में* **विश्वबंधु** *(साप्ताहिक) पत्रिका का संपादन किया। अपनी मातृभाषा मैथिली में वे* **यात्री** *नाम से रचना करते थे। मैथिली में नवीन भावबोध की रचनाओं का प्रारंभ उनके महत्त्वपूर्ण कविता-संग्रह* **चित्रा** *से माना जाता है। नागार्जुन ने संस्कृत तथा बांग्ला में भी काव्य-रचना की है।*

लोकजीवन, प्रकृति और समकालीन राजनीति उनकी रचनाओं के मुख्य विषय रहे हैं। विषय की विविधता और प्रस्तुति की सहजता नागार्जुन के रचना संसार को नया आयाम देती है। छायावादोत्तर काल के वे अकेले कवि हैं जिनकी रचनाएँ ग्रामीण चौपाल से लेकर विद्वानों की बैठक तक में समान रूप से आदर पाती हैं। जटिल से जटिल विषय पर लिखी गईं उनकी कविताएँ इतनी सहज, संप्रेषणीय और प्रभावशाली होती हैं कि पाठकों के मानस लोक में तत्काल बस जाती हैं। नागार्जुन की कविता में धारदार व्यंग्य मिलता है। जनहित के लिए प्रतिबद्धता उनकी कविता की मुख्य विशेषता है।

नागार्जुन ने छंदबद्ध और छंदमुक्त दोनों प्रकार की कविताएँ रचीं। उनकी काव्य-भाषा में एक ओर संस्कृत काव्य परंपरा की प्रतिध्वनि है तो दूसरी ओर बोलचाल की भाषा की रवानी और जीवंतता भी।

पत्रहीन नग्न गाछ *(मैथिली कविता संग्रह) पर उन्हें* ***साहित्य अकादमी पुरस्कार*** *प्रदान किया गया। उन्हें उत्तर प्रदेश के* ***भारत-भारती पुरस्कार****, मध्य प्रदेश के* ***मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार*** *और बिहार सरकार के* ***राजेंद्र प्रसाद पुरस्कार*** *से सम्मानित किया गया। उन्हें दिल्ली की हिंदी अकादमी का* ***शिखर सम्मान*** *भी मिला।*

उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं – ***युगधारा, प्यासी पथराई आँखें, सतरंगे पंखों वाली, तालाब की मछलियाँ, हज़ार-हज़ार बाहों वाली, तुमने कहा था, पुरानी जूतियों का कोरस, आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने, रत्नगर्भा, ऐसे भी हम क्या : ऐसे भी तुम क्या, पका है कटहल, मैं मिलटरी का बूढ़ा घोड़ा, भस्मांकुर । बलचनमा, रतिनाथ की चाची, कुंभी पाक, उग्रतारा, जमनिया का बाबा, वरुण के बेटे*** *जैसे उपन्यास भी विशेष महत्त्व के हैं। उनकी समस्त रचनाएँ* ***नागार्जुन रचनावली*** *(सात खंड) में संकलित हैं।*

यहाँ उनकी ***बादल को घिरते देखा है*** *कविता संकलित की गई है। इस कविता में उन्होंने बादल के कोमल और कठोर दोनों रूपों का वर्णन किया है जिसमें हिमालय की बरफ़ीली घाटियों, झीलों, झरनों तथा देवदार के जंगलों के साथ-साथ किन्नर-किन्नरियों के जीवन का यथार्थ चित्र भी शामिल है। भाव और भाषा की दृष्टि से कविता कालिदास और निराला की परंपरा से जुड़ती है।*

बादल को घिरते देखा है

अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

तुंग हिमालय के कंधों पर
छोटी-बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त-मधुर विसतंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

ऋतु वसंत का सुप्रभात था
मंद-मंद था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णिम शिखर थे
एक दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशा काल से चिर-अभिशापित
बेबस उस चकवा-चकई का
बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

दुर्गम बरफ़ानी घाटी में
शत-सहस्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठनेवाले
निज के ही उन्मादक परिमल-
के पीछे धावित हो-होकर
तरल तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

कहाँ गया धनपति कुबेर वह
कहाँ गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम-प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढ़ा बहुत परंतु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुंबी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

शत-शत निर्झर-निर्झरणी-कल
मुखरित देवदारु कानन में,
शोणित धवल भोज पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघढ़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए,

शतदल लाल कमल वेणी में,
रजत-रचित मणि-खचित कलामय
पान पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपदी पर,
नरम निदाग बाल-कस्तूरी
मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारुण आँखोंवाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

प्रश्न-अभ्यास

1. इस कविता में बादलों के सौंदर्य चित्रण के अतिरिक्त और किन दृश्यों का चित्रण किया गया है?
2. प्रणय-कलह से कवि का क्या तात्पर्य है?
3. कस्तूरी मृग के अपने पर ही चिढ़ने के क्या कारण हैं?
4. बादलों का वर्णन करते हुए कवि को कालिदास की याद क्यों आती है?
5. कवि ने 'महामेघ को झंझानिल से गरज-गरज भिड़ते देखा है' क्यों कहा है?
6. 'बादल को घिरते देखा है' पंक्ति को बार-बार दोहराए जाने से कविता में क्या सौंदर्य आया है? अपने शब्दों में लिखिए।
7. निम्नलिखित का भाव स्पष्ट कीजिए–

   (क) निशा काल से चिर-अभिशापित / बेबस उस चकवा-चकई का
   बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें / उस महान सरवर के तीरे
   शैवालों की हरी दरी पर / प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।

(ख) अलख नाभि से उठनेवाले / निज के ही उन्मादक परिमल–
के पीछे धावित हो–होकर / तरल तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है।

8. संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए–
   (क) छोटे–छोटे मोती जैसे..........कमलों पर गिरते देखा है।
   (ख) समतल देशों से आ–आकर..........हंसों को तिरते देखा है।
   (ग) ऋतु वसंत का सुप्रभात था..........अगल–बगल स्वर्णिम शिखर थे।
   (घ) ढूँढ़ा बहुत परंतु लगा क्या..........जाने दो, वह कवि–कल्पित था।

योग्यता–विस्तार

1. अन्य कवियों की ऋतु संबंधी कविताओं का संग्रह कीजिए।
2. कालिदास के 'मेघदूत' का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कीजिए।
3. बादल से संबंधित अन्य कवियों की कविताएँ यादकर अपनी कक्षा में सुनाइए।
4. एन.सी.ई.आर.टी. ने कई साहित्यकारों, कवियों पर फ़िल्में तैयार की हैं। नागार्जुन पर भी फ़िल्म बनी है। उसे देखिए और चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

अमल–धवल – निर्मल और सफ़ेद
तुहिन कण – ओस की बूँद
तुंग – ऊँचा
तिक्त–मधुर – कड़वे और मीठे
विसतंतु – कमलनाल के भीतर स्थित कोमल रेशे या तंतु
चिर–अभिशापित – सदा से ही शापग्रस्त, दुखी, अभागे
शैवाल – काई की जाति की एक घास

प्रणय-कलह	–	प्यार-भरी छेड़छाड़
उन्मादक परिमल	–	नशीली सुगंध
कुबेर	–	धन का स्वामी, देवताओं का कोषाध्यक्ष
अलका	–	कुबेर की नगरी
व्योम प्रवाही	–	आकाश में घूमनेवाला
मेघदूत*	–	कालिदास का प्रसिद्ध खंडकाव्य
इंद्रनील	–	नीलम, नीले रंग का कीमती पत्थर
कुवलय	–	नील कमल
शतदल	–	कमल
रजत-रचित	–	चाँदी से बना हुआ
मणि-खचित	–	मणियों से जड़ा हुआ
पान-पात्र	–	मदिरा पीने का पात्र, सुराही
द्राक्षासव	–	अंगूरों से बनी सुरा
लोहित	–	लाल
त्रिपदी	–	तिपाई
निदाग	–	दाग रहित
उन्मद	–	मदमस्त
मदिरारुण आँखें	–	मदिरा पीने से लाल हुई आँखें
किन्नर	–	देवलोक की एक कलाप्रिय जाति

****मेघदूत** संस्कृत के महाकवि कालिदास का प्रसिद्ध खंडकाव्य है, जिसके नायक यक्ष और नायिका यक्षिणी शाप के कारण अलग रहने को बाध्य होते हैं। यक्ष मेघ को दूत बनाकर यक्षिणी के लिए संदेश भेजता है। इस काव्य में प्रकृति का मनोरम चित्रण हुआ है।*

श्रीकांत वर्मा

(सन् 1931–1986)

श्रीकांत वर्मा का जन्म बिलासपुर, मध्य प्रदेश में हुआ। उनकी आरंभिक शिक्षा बिलासपुर में ही हुई। सन् 1956 में नागपुर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने एक पत्रकार के रूप में अपना साहित्यिक जीवन शुरू किया। वे ***श्रमिक, कृति, दिनमान*** *और* ***वर्णिका*** *आदि पत्रों से संबद्ध रहे। मध्य प्रदेश सरकार ने उन्हें* ***तुलसी पुरस्कार, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी पुरस्कार*** *और* ***शिखर सम्मान*** *से सम्मानित किया। उन्हें केरल का* ***कुमारन आशान राष्ट्रीय पुरस्कार*** *भी प्रदान किया गया।*

श्रीकांत वर्मा की कविताओं में समय और समाज की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के प्रति क्षोभ का स्वर प्रकट हुआ है। ***भटका मेघ, दिनारंभ, मायादर्पण, जलसाघर*** *और* ***मगध*** *उनके चर्चित काव्य संग्रह हैं। इन कविताओं से गुज़रते हुए यह महसूस होता है कि कवि का अपने परिवेश और संघर्षरत मनुष्य से गहरा लगाव है। उसके आत्मगौरव और भविष्य को लेकर वे लगातार चिंतित हैं। उनमें यदि परंपरा का स्वीकार है, तो उसे तोड़ने और बदलने की बेचैनी भी। प्रारंभ में उनकी कविताएँ अपनी ज़मीन और ग्राम्य-जीवन की गंध को अभिव्यक्त करती हैं किंतु* ***जलसा घर*** *तक आते-आते महानगरीय बोध का प्रक्षेपण करने लगती हैं या कहना चाहिए, शहरीकृत अमानवीयता के खिलाफ़ एक संवेदनात्मक बयान में बदल जाती हैं। इतना ही नहीं इनके दायरे में शोषित-उत्पीड़ित और बर्बरता के आतंक में जीती पूरी-की-पूरी दुनिया सिमट आती है। उनकी कविताओं में अभिव्यक्त यथार्थ हमें अनेक स्तरों पर प्रभावित करता है। उनका अंतिम कविता संग्रह* ***मगध*** *तत्कालीन शासक वर्ग के त्रास और उसके अंधकारमय भविष्य को बहुत प्रभावी ढंग से रेखांकित करता है।*

उनकी प्रकाशित अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं – ***झाड़ी संवाद*** *(कहानी-संग्रह),* ***दूसरी बार*** *(उपन्यास),* ***जिरह*** *(आलोचना),*

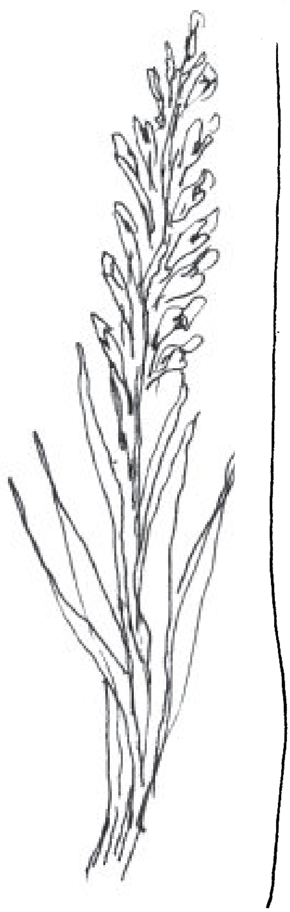

अपोलो का रथ *(यात्रा-वृत्तांत),* ***.फ़ैसले का दिन*** *(अनुवाद),* ***बीसवीं शताब्दी के अँधेरे में*** *(साक्षात्कार और वार्तालाप)।*

पाठ्यपुस्तक में संकलित कविता ***हस्तक्षेप*** *में सत्ता की क्रूरता और उसके कारण पैदा होनेवाले प्रतिरोध को दिखाया गया है। व्यवस्था को जनतांत्रिक बनाने के लिए समय-समय पर उसमें हस्तक्षेप की ज़रूरत होती है वरना व्यवस्था निरंकुश हो जाती है। इस कविता में ऐसे ही तंत्र का वर्णन है जहाँ किसी भी प्रकार के विरोध के लिए गुंजाइश नहीं छोड़ी गई है। कवि सवाल खड़ा करता है कि जहाँ मुर्दे का भी हस्तक्षेप करना संभव है उस समाज में जीता-जागता मनुष्य चुप क्यों?*

हस्तक्षेप

कोई छींकता तक नहीं
इस डर से
कि मगध की शांति
भंग न हो जाए,
मगध को बनाए रखना है, तो,
मगध में शांति
रहनी ही चाहिए

मगध है, तो शांति है

कोई चीखता तक नहीं
इस डर से
कि मगध की व्यवस्था में
दखल न पड़ जाए
मगध में व्यवस्था रहनी ही चाहिए

मगध में न रही
तो कहाँ रहेगी?
क्या कहेंगे लोग?

लोगों का क्या?
लोग तो यह भी कहते हैं
मगध अब कहने को मगध है,

रहने को नहीं

कोई टोकता तक नहीं
इस डर से
कि मगध में
टोकने का रिवाज न बन जाए

एक बार शुरू होने पर
कहीं नहीं रुकता हस्तक्षेप—

वैसे तो मगधनिवासियों
कितना भी कतराओ
तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से—

जब कोई नहीं करता
तब नगर के बीच से गुज़रता हुआ
मुर्दा
यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है—
मनुष्य क्यों मरता है?

प्रश्न-अभ्यास

1. मगध के माध्यम से 'हस्तक्षेप' कविता किस व्यवस्था की ओर इशारा कर रही है?
2. व्यवस्था को 'निरंकुश' प्रवृत्ति से बचाए रखने के लिए उसमें 'हस्तक्षेप' ज़रूरी है – कविता को दृष्टि में रखते हुए अपना मत दीजिए।
3. मगध निवासी किसी भी प्रकार से शासन व्यवस्था में हस्तक्षेप करने से क्यों कतराते हैं?
4. 'मगध अब कहने को मगध है, रहने को नहीं' – के आधार पर मगध की स्थिति का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
5. मुर्दे का हस्तक्षेप क्या प्रश्न खड़ा करता है? प्रश्न की सार्थकता को कविता के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
6. 'मगध को बनाए रखना है, तो, मगध में शांति रहनी ही चाहिए' – भाव स्पष्ट कीजिए।
7. 'हस्तक्षेप' कविता सत्ता की क्रूरता और उसके कारण पैदा होनेवाले प्रतिरोध की कविता है – स्पष्ट कीजिए।
8. निम्नलिखित लाक्षणिक प्रयोगों को स्पष्ट कीजिए –

   (क) कोई छींकता तक नहीं
   (ख) कोई चीखता तक नहीं
   (ग) कोई टोकता तक नहीं
9. निम्नलिखित पद्यांशों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए –

   (क) मगध को बनाए रखना है, तो,.........मगध है, तो शांति है
   (ख) मगध में व्यवस्था रहनी ही चाहिए.........क्या कहेंगे लोग?
   (ग) जब कोई नहीं करता.........मनुष्य क्यों मरता है?

योग्यता-विस्तार

1. 'एक बार शुरू होने पर
   कहीं नहीं रुकता हस्तक्षेप'

   इस पंक्ति को केंद्र में रखकर परिचर्चा आयोजित करें।
2. 'व्यक्तित्व के विकास में प्रश्न की भूमिका' विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

हस्तक्षेप - रोकना, प्रश्न उठाना
रिवाज - चलन, प्रथा
कतराओ - बचो, सामने न आओ

धूमिल

(सन् 1936–1975)

सुदामा पांडेय 'धूमिल' का जन्म वाराणसी के पास खेवली नामक गाँव में हुआ। हाई स्कूल पास करके रोज़ी की फ़िक्र में पड़ गए। सन् 1958 में आई.टी.आई. वाराणसी से विद्युत डिप्लोमा किया और वहीं पर अनुदेशक के पद पर नियुक्त हो गए। असमय ही ब्रेन ट्यूमर से धूमिल की मृत्यु हो गई।

धूमिल की अनेक कविताएँ समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं, कुछ अभी तक अप्रकाशित भी हैं। **संसद से सड़क तक, कल सुनना मुझे** और **सुदामा पांडेय का प्रजातंत्र** उनके काव्य-संग्रह हैं। धूमिल को मरणोपरांत **साहित्य अकादमी पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

धूमिल के काव्य-संस्कारों के भीतर एक खास प्रकार का गँवईपन है, एक भदेसपन, जो उनके व्यंग्य को धारदार और कविता को असरदार बनाता है। उन्होंने अपनी कविता में समकालीन राजनीतिक परिवेश में जी रहे जागरूक 'व्यक्ति' की तसवीर पेश की है और 1960 के बाद के मोहभंग को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। संघर्षरत मनुष्यों के प्रति धूमिल के मन में अगाध करुणा है। उन्हें ऐसा लगता है कि समकालीन परिवेश इस करुणा का शत्रु है। इसीलिए उनकी कविता में यह करुणा कहीं आक्रोश का रूप धारण कर लेती है तो कहीं व्यंग्य और चुटकुलेबाज़ी का। साठोत्तरी कविता के इसी आक्रोश और ज़मीन से जुड़ी मुहावरेदार भाषा के कारण धूमिल की कविताएँ अलग से पहचानी जा सकती हैं।

धूमिल की काव्य भाषा और काव्य शिल्प में एक ज़बर्दस्त गरमाहट है – ऐसी गरमाहट जो बिजली के ताप से नहीं, जेठ की दुपहरी से आती है।

पाठ्यपुस्तक में उनकी कविता **घर में वापसी** दी गई है। यह धूमिल की एक प्रमुख कविता है जिसमें गरीबी से संघर्षरत

परिवार की व्यथा-कथा है। मनुष्य संसार की भागमभाग भरे जीवन से राहत पाने के लिए स्नेह, ममत्व, अपनत्व और सुरक्षा भरे माहौल में घर बनाता है और उसमें रहता है। यहाँ विडंबना यह है कि तमाम रिश्ते-नातों, स्नेह और अपनत्व के बीच गरीबी की दीवार खड़ी है। गरीबी से लड़ते-लड़ते अब इतनी भी ताकत नहीं रही कि रिश्तों में ऊर्जा का संचार पैदा करने हेतु कोई चाबी बनाई जा सके और इस जटिल ताले को खोला जा सके।

कविता में एक ऐसे घर की आकांक्षा है जहाँ गरीबी दीवार की तरह बाधक न हो। माँ-पिता, बेटी, पत्नी आदि का स्नेहिल वातावरण हो ताकि जीवन-संघर्ष में घर का सुख प्राप्त हो सके।

घर में वापसी

मेरे घर में पाँच जोड़ी आँखें हैं
माँ की आँखें पड़ाव से पहले ही
तीर्थ–यात्रा की बस के
दो पंचर पहिए हैं।

पिता की आँखें –
लोहसाँय की ठंडी शलाखें हैं
बेटी की आँखें मंदिर में दीवट पर
जलते घी के
दो दिए हैं।

पत्नी की आँखें आँखें नहीं
हाथ हैं, जो मुझे थामे हुए हैं

वैसे हम स्वजन हैं, करीब हैं
बीच की दीवार के दोनों ओर
क्योंकि हम पेशेवर गरीब हैं।

रिश्ते हैं; लेकिन खुलते नहीं हैं
और हम अपने खून में इतना भी लोहा
नहीं पाते,
कि हम उससे एक ताली बनवाते
और भाषा के भुन्ना-सी ताले को खोलते,

रिश्तों को सोचते हुए
आपस में प्यार से बोलते,
कहते कि ये पिता हैं,
यह प्यारी माँ है, यह मेरी बेटी है
पत्नी को थोड़ा अलग
करते – तू मेरी
हमसफ़र है,
हम थोड़ा जोखिम उठाते
दीवार पर हाथ रखते और कहते
यह मेरा घर है।

प्रश्न-अभ्यास

1. घर एक परिवार है, परिवार में पाँच सदस्य हैं, किंतु कवि पाँच सदस्य नहीं उन्हें पाँच जोड़ी आँखें क्यों मानता है।
2. 'पत्नी की आँखें आँखें नहीं हाथ हैं, जो मुझे थामे हुए हैं' से कवि का क्या अभिप्राय है?
3. 'वैसे हम स्वजन हैं, करीब हैं·····क्योंकि हम पेशेवर गरीब हैं' से कवि का क्या आशय है? अगर अमीर होते तो क्या स्वजन और करीब नहीं होते?

4. 'रिश्ते हैं; लेकिन खुलते नहीं' – कवि के सामने ऐसी कौन सी विवशता है जिससे आपसी रिश्ते भी नहीं खुलते हैं?
5. निम्नलिखित का काव्य सौंदर्य स्पष्ट कीजिए –

   (क) माँ की आँखें पड़ाव से पहले ही तीर्थ-यात्रा की बस के दो पंचर पहिए हैं।
   (ख) पिता की आँखें लोहसाँय की ठंडी शलाखें हैं।

योग्यता-विस्तार

1. घर में रहनेवालों से ही घर, घर कहलाता है। पारिवारिक रिश्ते खून के रिश्ते हैं फिर भी उन रिश्तों को न खोल पाना कैसी विवशता है! अपनी राय लिखिए।
2. आप अपने पारिवारिक रिश्तों-संबंधों के बारे में एक निबंध लिखिए।
3. 'यह मेरा घर है' के आधार पर सिद्ध कीजिए कि आपका अपना घर है।

शब्दार्थ और टिप्पणी

पड़ाव – फ़ेज़, चरण
लोहसाँय – लोहे के औज़ार बनानेवाली भट्टी
शलाखें (सलाखें) – लोहे की छड़
दीवट – दीया रखने के लिए बनाया गया स्थान
भुन्ना-सी – जटिल

टिप्पणी